गुप्त जी की यशोधरा

एक आलोचनात्मक दृष्टि

लेखक
श्री रामदीन पाण्डेय एम० ए०, बी० एड्०
साहित्यरत्न (हिन्दी), साहित्याचार्य (संस्कृत)

प्रकाशक
साहित्य-भवन लिमिटेड,
प्रयाग

प्रथमबार १,०००] १९४० [मूल्य ।।।)

स्वार्थों, राजकीय सुखों और पार्थिव भोगों की तिलांजलि दे चुकी थी, वही लक्ष्य जब प्राप्त होता है और प्रिय सिद्धार्थ उसे शुद्ध-बुद्ध और मैत्री-करुणापूर्ण के रूप में मिलता है तो यशोधरा उसी बुद्ध के हाथों में, उसके संघ और धर्म के अभ्युदय और प्रसार के लिये प्रिय राहुल को समर्पित करती है।२ सात्विक और करुण वातावरण में परपालित राहुल माता के स्वर में अपना स्वर मिला कर गौतम के चरणों पर पड़ अनुरोध करता है :—

पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे।

वह न अब शूर होने का आकांक्षी है, न राज्य, ऐश्वर्य तथा सांसारिक-सुखों की ममता रखता है। किशोरावस्था से कुछ ऊपर उठा हुआ बालक जो सुख में पला, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित रहा, विविध प्रकार के स्वादिष्ट और मनोरम पदार्थों का उपभोग किया, संप्रति सामूहिक मनोविज्ञान (Crowd psychology) के चंगुल में पड़ बौध भिक्षु बनने की कामना करता है।

बालक स्वभावतः निर्देश (Suggestion) तथा अनुकरण (Imitation) का पक्षपाती होता है। उसमें गंभीर गवेषणा और विवेचन करने की पूरी शक्ति परिवर्धित नहीं हो पाती है। वह या तो दूसरे के हाँ में हाँ मिलाता है या जैसा उससे बड़ा तथा उसकी दृष्टि में भला आदमी काम करता है, वैसा ही काम स्वयं करना चाहता है। अतः अपनी प्रियतम माता, वयोवृद्ध बाबा तथा अन्य कपिलवस्तु के व्यक्तियों को बुद्ध की तथा उनके संघ की शरण में जाते देख वह

२—आ राहुल, बढ़ बेटा, पूज्य पिता से परंपरा पा तू !

इसी बात की पुष्टि करते हैं कि गुप्त जी ने राहुल के लिए ऐसा वातावरण निर्मित किया है कि वह बौधमार्ग के अतिरिक्त दूसरी राह पकड़ने में प्रवृत्त हो नहीं सकता।

शिक्षा का उद्देश्य जीवन के लिये बालक को प्रस्तुत करना है। राष्ट्र, समाज और धर्म की आवश्यकताओ के अनुरूप मानव-जीवन की चेष्टाएँ विभाजित रहती हैं। चेष्टाओ में अनेक रूपता और विभिन्नता के कारण मानव कार्यों में अनेकता और विभिन्नता पायी जाती है। समाज, धर्म और राष्ट्र मानव की सृष्टि है। शिक्षा का विधान इन्हीं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है। एवं गुप्त जी ने राहुल की शिक्षा का जो विधान किया वह एक अंश में अपना अलग परिणाम प्रदर्शित करने में समर्थ हुआ।

राहुल के मन और शरीर की शक्तियो के विकास में उस प्राकृत विकास-क्रम का अभाव देख पड़ता है जो शिशु-मनोवृत्ति और शक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। साधारण मानव शिशु के विकास-क्रम से राहुल की अन्तःवृत्तियों के विकास की तुलना काव्यकार के मनोवैज्ञानिक अनुभव की परिचायक होगी। इसके अलावा यह भी विदित होगा कि कवि शिशु की चेष्टाओं को समझने में और उन्हे अंकित करने में कहाँ तक सफल हुआ है।

मानव-शिशु सृष्टि में एक विशेष स्थान ग्रहण करता है। वह मानव-जीवन धारा की एक ज़ोरदार और निहायत जरूरी कड़ी है। वह माँ-बाप का स्थिरांश है। वह पूर्वजों से आबद्ध है। उसका

संबन्ध विश्व की उस जन-सृष्टि से है जिसमें सर्व प्रथम जीवन का विकास हुआ। स्वयं शिशु भावी-मानव-जीवन द्रव (Germ-Plasm) का वाहक है। उसे जो शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ पूर्वजों से मातृ-गर्भ में मातृपैत्रिक पुष्प-वीर्य के रूप में प्राप्त होती हैं उन्हें वह भावी संतान को परिवर्धित या परिकुंठित रूप में प्रदान करता है। शिशु सुषमा के प्रसून, ऋजुता के प्रतीक, धवलता के धाम, नवलता के नायक, सृष्टि के विकासक, शिशु कवि-हृदय के लिए विशेष आकर्षण रखते हैं। विश्व के कवियों ने शिशु-सौन्दर्य के चित्रण में अपना कलेजा काढ़ कर रख दिया है। अपनी वाणी के विस्तार से उन कलाकारों ने शिशु में ऐसी सुषमा, सरलता, सरसता और मनोमुग्धकारिता प्रदान की है जो मुरझायी हृदय-लता को, सोती जाति को, पतित और पद-दलित मानव को सींचती, उठाती, जगाती और सजाती है।

हिन्दी के कवियों में अंधे सूर ने, अपनी अन्तर्दृष्टि से बालकृष्ण की रमणीयता, अलौकिकता और मनोमुग्धकारिता अनुभव की थी। उसने अपनी क़लम की नोक से एक ऐसा अनूठा सागर तैयार किया जिसमें बालसौन्दर्य, केलि, कौतुक और वात्सल्य की लहरियां अविरत हिलोरें मारती रहती हैं। सागर में गोता लगाने वाले ही इस अव-गाहन का आनन्द लूटते हैं। वर्तमान शताब्दी के दूसरे दशक के कवियों में वियोगीहरि के सरस नेत्रों ने भारत के शौर्य रूप को देखा। उसने वीर सतसई की संरचना को शिशु-शौर्य की [illegible] से लबालब भर दिया। शिशु की सुषमा और [illegible] जगत् को उपर्युक्त कवियों के द्वारा मिल चुकी थी। [illegible]

की परिधि से बाहर लोक के साथ बढ़ जाता है। स्वेच्छानुकूल काम करने में वह अपने को स्वतंत्र नहीं पाता। प्रतिक्रिया (Re-action) की भावना जाग्रत हो उठती है। लज्जा और बेकसी उसे दबा देती हैं। आत्माभिव्यंजन की प्रवृत्ति में परिवर्तन करने के लिये वह बाध्य हो जाता है। नग्न रहना उसे बेतरह खटकता है। वेश-विन्यास (Dressing) दूसरे से न करा स्वयं कर लेता है। दूसरों को स्वच्छ वस्त्र पहने देख स्वयं स्वच्छ रहने की चेष्टा करता है। जब किसी वस्तु के लिए अड़ जाता है और रोने-धोने, प्रयत्न करने, क्रोध प्रदर्शित करने पर भी वह उपलब्ध नहीं होती, तब अपनी मनोवृत्ति और शक्ति को दबाने की ज़रूरत महसूस करता है।

आत्माभिव्यंजन-वृत्ति को इस प्रकार दबाना बालक के स्वस्थ विकास के लिये हितकर नहीं समझा जाता। अतः यहीं पर सुयोग्य शिक्षक, कुशल अभिभावक और उन्नायक की सहायता तथा सहयोगिता की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार निपुण इंजिनियर प्रखर जल प्रवाह में रुकावट उपस्थित करने के पूर्व उसके अवरुद्ध जल के निकास की सर्वप्रथम व्यवस्था करता है, उसी प्रकार बालक की मनोवृत्ति, शक्ति, उमंग और उत्कंठा पर नियंत्रण रखने के पूर्व उसकी उन शक्तियों के निकास का प्रबंध करना चाहिए। रुका हुआ जल तट को तोड़ कर तीरवर्ती तरु और नगर को छिन्न-भिन्न कर देता है। एवं आत्माभिव्यंजन-वृत्ति को आघात पहुँचते ही बालक घर छोड़ भाग जाता है, दुष्ट बालकों के दल में मिल जाता है और हिंस्र स्वभाव ग्रहण करता है।

उत्सर्जन

वत्स व्योमकेश।

तू प्रणय का पुतला, पियूष का प्रवर्षा, धवलता का धाम, मेधा की मूर्ति, स्नेहमयी जननी के नेत्रों की पुतली और मेरे जीवन की संजीवन-बूटी था। क्रूर काल ने मेरी गोदी सूनी कर तुझे किस दुष्प्रवेश्य गह्वर में बंद रखा है—पता नहीं।

तेरी स्मृति को जाग्रत रखने का उद्दीपन, बालक राहुल में मिला। अतः उसके शैशव और बालपन का आलोचनात्मक अंकन। तुझे बालक ही तो प्रिय थे। इस लिये यह तुझे अर्पित।

तुम्हारा

वियोग-विदग्ध-पिता

रामदीन

मनोवृत्ति का प्रभाव उपर्युक्त से हटा कर दूसरे स्रोत में संचालित न किया जाय, तो उसके जीवन से लोक को अधिक लाभ नहीं हो सकता। इस उम्र के बालकों को अगर हम शृङ्गार की भिन्न-भिन्न सामग्रियों के निर्मायकों, विविध भाँति के यानों के आविष्कारकों, नवीन-नवीन वाद्य-यंत्रों के उन्नायकों की संगति में रख छोड़ें, तो बालक निसन्देह अपनी लिंगवृत्ति को (Sex-instinct) निर्मायक, कलाविद्, शिल्पज्ञ, संगीताचार्य और वाद्य-यंत्र प्रकाशक के रूप में अभिव्यक्त करता है। धन कमाना, रुपये जमा करना, अपनी रक्षा करना, ज्ञान-उपार्जित करना आदि आत्माभिव्यंजन-वृत्ति है। स्त्री-पुत्र के परिपालन के लिए धन कमाना, दूसरे की रक्षा के लिए शक्ति का संचय करना, जगत् के कल्याण के लिए ज्ञानोपार्जन करना आदि परिवर्तित लिंग-वृत्ति हैं।

यशोधरा का राहुल भी इस अवस्था को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। गौतम की अपेक्षा यशोधरा में वह अधिक अभिरुचि रखता है। माता को छोड़कर तप के लिये चले गये पिता को रह-रह कर कोसता है। पिता की विचार-बुद्धि पर आश्चर्य प्रकट करता है। माता का दुःख देख अपने विवाह द्वारा दूसरी स्त्री को दुखिनी बनाना नहीं चाहता। ये तत्व राहुल-वर्णन से निकाले जा सकते हैं। गुप्त जी ने साधारण रीति से शिशु-मनोवृत्तियों की ओर संकेत कर दिया है। आपने यह बात ध्यान में न रखी कि बालक समस्त मानव-शरीर-मनोविकास के इतिहास की पुनरावृत्ति करता है। जो कार्य पूर्व मानव अति पुरातन काल से करते चले आए हैं उन्हें

मनुष्य आदि चेतन प्राणी हैं। इनके जीवन-तत्व का चित्रण का का लक्ष्य है। इस चिरंतन जगत् का ज्ञान मनुष्य अनादि काल प्राप्त करता चला आया है। उस ज्ञान को उसने काव्य, व्याकरण, कोष; छंद, कला, दंडनीति, काम-शास्त्र, इतिहास, दर्शन, विज्ञान और अर्थशास्त्र आदि के रूप में रख छोड़ा है। जिस कवि का अध्ययन और संसार का अनुभव जितना ही विस्तृत और गंभीर होगा, उसकी कविता उतनी ही विश्व-व्यापिनी होगी। साहित्य और शब्द-शास्त्र के अनुशीलन से उसके शब्द शुद्ध होंगे और पद-विन्यास सुन्दर।

ज्ञानवृद्धों की सेवा, अवेक्षण, प्रतिभा, चित्त की एकाग्रता, काव्य-परिचय, काव्य-रचना का उद्योग भी कवि-जीवन के विकास के प्रमुख साधन हैं। अवेक्षण मन की एक शक्ति है जिसके सहारे कवि उचित शब्दों का प्रयोग और फिजूल शब्दों का बहिष्कार करता है। अवेक्षण-शक्ति सब में समान रूप से पायी नहीं जाती। अतः सभी कवियों का शब्द-चयन एक-सा नहीं होता। काव्य का उत्कर्ष अधिकतर भाव और शब्द-चयन ही पर निर्भर करता है। प्रतिभा तो कवि-जीवन का मूलभूत कारण है। काव्य-रचने की शक्ति, सत्य की खोज करने की क्षमता, लोक की व्यथाओं को उचित शब्दों के द्वारा प्रकट करने की कुशलता कवि-प्रतिभा है। प्रतिभा मानव-प्रकृति की देन है और वंश परंपरागत विकसित बुद्धि का विलास।

कवि और समीक्षा—किसी कविता को पूर्णतः समझने के लिए उसके कवि की अन्तःवृत्तियों का पता लगाना ज़रूरी समझा जाता है। कवि को समझने के लिए थोड़ी देर तक कवि-हृदय में अपना हृदय

दो शब्द

कविवर मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी-काव्य-जगत् की उन कतिपय विभूतियों में से हैं जिन्होंने अपनी मर्मस्पर्शी कृतियों द्वारा समाज की शुष्क नसों में नवजीवन का पुनीत स्रोत प्रवाहित किया है और कर्तव्य-विमूढ़ प्राणियों को उच्चादर्श की शिक्षा दी है। उनकी रचनाओं में मानव-जीवन का संदेश है, भूत काल की झाँकी है और हैं उन वीर पुरुषों और वीराङ्गनाओं का कलापूर्ण चरित्र-चित्रण जो भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं। उनके काव्य में राष्ट्रीय विचारों का सौंदर्य, मानव-हृदय की अन्तरतम प्रवृत्तियों का संघर्ष, परिवर्तन की पुकार और पदाक्रान्त राष्ट्र का पुनः स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जागरण का महान् उद्घोष है। राष्ट्रीय उद्बोधन के साथ-साथ मानवी हृदय की कोमलता का भी गुप्त जी ने सफल निर्वाह किया है। उनकी लेखनी जिस विषय को लेकर उठी है उसमें उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अपनी कृतियों में केवल उन मानवी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है जिनकी मनुष्य-समाज को प्रत्येक युग में आवश्यकता पड़ा करती है। उनकी कला उच्चकोटि की है, अतः ऐसे प्रतिभाशील कलाविद् की प्राणोन्मादिनी कृतियों की सूक्ष्मतम विचार-धाराओं को प्रकाश में लाना कितना कठिन है इसका अनुमान वे ही कला-पारखी कर सकते

हैं जिन्होंने गुप्त जी का अध्ययन करने के पश्चात् उनकी कला के सम्बन्ध में कुछ लिखने का साहस किया है। इस दृष्टि से जब मैं प० रामदीन पाण्डेय एम० ए० के इस प्रयास पर विचार करता हूँ तो मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। अतः मैं आपके इस आलोचनात्मक ग्रन्थ का स्वागत करता हूँ।

पं० रामदीन पाण्डेय हिन्दी-साहित्य के कुशल लेखक हैं। इस समय आप गिरिधर भूमिहार ब्राह्मण कालेज, मुजफ्फरपुर (बिहार) में हिन्दी के प्रोफ़ेसर हैं। आपका अध्ययन अत्यन्त गंभीर और गवेषणा-पूर्ण है। प्रस्तुत पुस्तक में आपने जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से गुप्त जी के 'यशोधरा' की सत्समालोचना की है उससे आपके पांडित्य का पर्याप्त परिचय मिलता है। आपके भावों में अनोखा उत्कर्ष और चिन्तन-धारा में नूतन प्रगति है। भाषा इतनी सरल एवं सुबोध है कि हिन्दी से किंचित परिचय रखने वाला विद्यार्थी भी गुप्त जी के सूक्ष्मतम विचारों से आनन्द-विभोर हो सकता है। आपके इस सफल प्रयास को देखकर मेरा विश्वास है कि भविष्य में आप हिन्दी-साहित्य को अन्य उत्कृष्ट रचनायें भेंट करेंगे।

निज़ामाबाद,
आज़मगढ
चैत्र शुक्ल १, सम्वंत् १९९७

राजेन्द्र सिंह गौड़ एम० ए०

काव्य की उपेक्षिता

यशोधरा

जगत् के समग्र मानव के लिए ख्याति प्राप्त करना संभव नहीं है। यह भी संभव नहीं कि संसार के सभी यशस्वी पुरुषों और भुवन-विख्यात महिलाओं के निकटतम सम्बन्धी भी उन्हीं से हों। प्रायः यह भी देखा जाता है कि कर्तव्य के पालन में तथा शुभ कर्म द्वारा यश के विस्तार में सभी को सुअवसर भी एक सा नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में राम के समकालीन कवि वाल्मीकि ने यदि लक्ष्मण और उर्मिला के चरित्रों का पूर्णरूपेण अंकन नहीं किया, तो इसमें आश्चर्य और नवीन कल्पना की आवश्यकता ही क्या? महाकवि अश्वघोष ने गोपा या यशोधरा के चरित्र पर उचित प्रकाश न डाला, तो इसमें छानबीन की कोई गुंजाइश नहीं।

कतिपय विवेचक कहा करते हैं कि आज भी जगत् में मुसोलिनी से वीर, बर्नर्डशा सा साहित्यिक, ऐंस्टिन सा वैज्ञानिक, रवीन्द्र सा कवीन्द्र—सैकड़ों पुरुष रत्न वर्त्तमान हैं जिनकी स्त्रियों और बच्चों के के विषय में जगत् अंधकार ही में पड़ा है। आधुनिक सामाजिक प्रेरणाओं अथवा 'गतानुगतिको लोकः' भेड़ियाधसान पद्धति से प्रेरित होकर जो कुशल कवि और लेखक उर्मिला, यशोधरा, चित्रांगदा

प्रभृति के चरित्रों पर आधुनिक समाज के आदर्शों का पुट देना चाहते हैं, वे तत्कालीन आदर्श, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा-पद्धति और उस समय के आचार-व्यवहार पर व्याघात करना चाहते हैं। उन पात्रों ने जो कार्य अपने जीवन में न किये, जो शक्ति उनमें विद्यमान न थी, जो मनोवृत्तियाँ वे प्रदर्शित न कर सके, उन कार्यों, शक्तियों और मनोवृत्तियों से उन पात्रों को अपनी कल्पना और कामना के सहारे विभूषित करना अन्याय और असत्य का आश्रय लेना है।

कहा जाता है कि कवि या लेखक को पात्रों के चरित्र में उलट फेर करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। वह समाज की मनोवृत्ति के अनुकूल पौराणिक पात्रों के चरित्र में परिवर्तन कर सकता है। ऐतिहासिक तथ्य को रोचक बनाने के लिए उसमें काल्पनिक आख्यान का समावेश कर सकता है। संसार के बड़े कवि तथा लेखक इसी नियम का अनुसरण करते आए हैं। शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटक तथा तुलसी के रामचरित-मानस, प्रभृति इसी प्राचीन-पुस्तक प्रणयन पद्धति का अनुसरण करते हैं। एवं आधुनिक कवि या लेखक प्राचीन पात्रों के कार्यों में जब नवीनता का आरोपण करता है, तब कोई अन्याय नहीं करता।

जिस मानव ने अपने जीवन-काल में कोई संस्मरणीय काम न किया, उसे सुन्दर और असुन्दर कर्मों का विधाता स्थिर करना न्याय और विवेक की दृष्टि से क्या उचित समझा जायगा ?

कतिपय विवेचकों का वक्तव्य है कि प्राचीन आदर्श पुरुष और स्त्रियों का प्रभाव हिन्दू-समाज पर प्रबल है। जब उनसे सम्बन्ध रखने

वाले पात्रों के शील और सौन्दर्य की नवीन कल्पना की जाती है, तो समाज उन पात्रों के अध्ययन में अभिरुचि प्रकट करता है। कुछ लोगों की सम्मति में यह सारहीन अनुमान समझा जाता है या ऊर्वर मस्तिष्क की कोरी कल्पना।

मानव-सभ्यता मस्तिष्क के क्रमिक विकास का परिणाम-स्वरूप है। मानव सदा नूतनता का आकांक्षी है। वह प्राचीनता की दीवार पर नवीनता की अट्टालिका के निर्माण में अनुरक्ति रखता है। अतः अतीत के पात्रों के शील, रूप और सौन्दर्य की नवीन व्याख्या करनेवाले कवियों और लेखकों की क़द्र दुनिया करती चली आई है। वाल्मीकि के नर-राम में नारायण के आरोपण करनेवाले तुलसी की प्रतिष्ठा जगत ने खुले दिल की। बादरायण के योगी, योधा, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ और विवेकी लोकोपकारी कृष्ण में केवल सौन्दर्य के विन्यास करनेवाले सूर के पदों की प्रसिद्धि उत्तर भारत के कोने-कोने में हुई। तब क्यों गौतम की पत्नी यशोधरा के चरित्र अंकित करने वाले हिन्दी के वर्तमान प्रमुख कवि गुप्त जी हमारी श्रद्धा के पात्र नहीं होंगे ?

यशोधरा के चरित्र पर अतीत के किसी कवि की दृष्टि न पड़ी। इस उपेक्षा के दो कारण संभव हैं। प्रथमतः उसने लोक, कुटुम्ब या समाज के कल्याण के लिये कोई ऐसा संस्मरणीय काम न किया जो जाति के साहित्य में स्थायी स्थान ग्रहण कर सके।

द्वितीयतः यशोधरा में ऐसे गुण होंगे जो गौतम के उत्कृष्ट गुणों के सामने उल्लेखनीय प्रमाणित नहीं हुए। सुतरां वे किसी कवि और लेखक का ध्यान आकर्षित न कर सके। कवि सम्राट् रवीन्द्र के हृदय

में सर्वप्रथम "काव्येर उपेक्षिता नारी" के प्रति सहानुभूति प्राप्त हुई। इस सहानुभूति से उनका तात्पर्य यह नहीं था कि कोई 'तिल को ताड़ बना दे' या असत् को सत् प्रमाणित कर दे।

हिन्दी के कवियों में गुप्त जी पर रवीन्द्र बाबू के "काव्येर उपेक्षिता नारी" शीर्षक लेख का प्रभूत प्रभाव पड़ा। उनने "साकेत" महाकाव्य में उर्मिला के चरित्र की सुन्दर कल्पना कर हिन्दी जगत् को मुग्ध कर लिया। इस प्रयास में आशातीत सफलप्रयत्न होने के कारण गुप्त जी की दृष्टि 'काव्य की उपेक्षिता' दूसरी रमणी यशोधरा पर पड़ी। प्रतिभा के सहारे यशोधरा के चरित्र के खास पहलू के धरातल पर इनने गद्य-पद्य में अपने विचारों का प्रखर स्रोत बहा दिया। काव्य के 'उपेक्षित नर' पर किसी महाकवि या लेखक का ध्यान नहीं गया है। इसका कारण यही हो सकता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में आकर्षण की मात्रा अधिक रहती है।

स्वर्गीय लाजपत के शब्दों में "स्त्री के समान सुन्दर और पवित्र वस्तु विश्व में और कोई नहीं है। संसार में मातृत्व उसे सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा देता है।" अतः कोमल हृदय कवियों के उद्गार का केन्द्र स्त्री ही होती है। उस स्त्री के अनेक रूप होते हैं—कन्या, भगिनी, वधू, कामिनी, माता, धात्री, समाजसेविका, समाजनेत्री, आचार्या, कवयित्री, लेखिका, उपदेशिका, सैनिका, शासिका, प्रभृति।

कविवर गुप्त जी ने यशोधरा के नारीत्व के किस रूप के चित्रण में सफलता प्राप्त की है और किस रूप के अंकन में असफलता, यही इस समीक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

कुमारी गोपा

किसी भी जीवन में प्रविष्ट होने के लिए तैयारी (preparation) की आवश्यकता है। पंडित कहलाने के पूर्व छात्रावस्था के कष्टों का सामना करना पड़ता है। शासक या नेता बनने के पूर्व शासित और अनुयायी के जीवन-तत्वों से पूर्ण परिचित और अभ्यस्त होना पड़ता है। कामिनी यशोधरा तथा राहुल जननी गोपा के लिये भी प्राकृत जीवन के विकासगत नियमों का अनुसरण करना अनिवार्य था। किसी भी सहृदय कवि या मेधावी लेखक के लिए ज़रूरी था कि वह गोपा के अविवाहित जीवन और उसकी प्ररम्भिक अवस्था की मानसिक और शारीरिक शक्तियों के विकास के चुने हुए पृष्ठों को हमारे सामने रखता। गोपा के कौमार-जीवन की एक ऐसी मर्मस्पर्शी तस्वीर खींचता जो संसार की अनूढ़ा महिलाओं तथा कन्याओं के लिये आदर्श-जीवन समझा जाता। इस प्रयत्न में वह देश के प्राचीनतम इतिहास, बौध साहित्य, तथा अन्य साहित्यिक उपकरणों का सहारा लेता। इन प्राचीन सामग्रियों का आश्रय ले अपनी बुद्धि के कौशल और कल्पना की उड़ान से कुमारी गोपा के एक ऐसे अभिनव-रूप का सृजन करता जिसमें उसकी बालसुलभ चेष्टाओं का दिग्दर्शन होता, उसके हास, क्रंदन, स्पर्द्धा, चाह, घृणा, भय और शोकादि मनो-वृत्तियों का वर्णन आधुनिक बालिका जगत् की आँखों को खोलने-

वाला प्रमाणित होता। कुमारी यशोधरा की बाल्यावस्था का चित्रण उठती हुई स्त्री जाति के जीवन में सरसता प्रदान करता और उनके कर्त्तव्यों के निर्धारण में सहायक होता। काव्योपेक्षिता यशोधरा का यह जीवन गुप्त जी के हाथों में पड़ कर भी पूर्णतः उपेक्षित हो गया।

कामिनी यशोधरा

स्त्री का दूसरा सरल स्वरूप कामिनी है। यह रूप सृष्टि का विकासक, लोक की जीवन धारा का प्रवाहक, प्रौढ़ मनुष्यों के धैर्य, शक्ति, बुद्धि और ज्ञान का उत्तेजक, सुख का प्रवर्धक, दुःख का विभाजक और उनके क्षुब्ध और अशांत मन का प्ररंजक है। धरा कामिनी के इसी रूप पर टिकी है। इसी रूप की तह में संघर्ष है। इसी में आकर्षण है। इसी रूप का प्रतिबिंब सुषमाक्रांत प्रकृति में मिलता है।

प्रकृति के रूप की भाँति कामिनी के रूप में आकर्षण और विकर्षण—दोनों पाये जाते हैं। कोकिल की कूक में आकर्षण है, तो उलूक के हड़गीत में विकर्षण। निर्झरिणी के निस्पंदन में रुचिरता है, तो उदधि की ऊर्मियों के उत्थान में लोमहर्षण। कहना न होगा कि कामिनी का एक रूप सीता है तो दूसरा सूर्पणखा। एक जोन आफ़ आर्क तो दूसरा मेरी स्टुअर्ट, एक झांसी की रानी तो दूसरा 'प्रसाद' जी की 'अनन्त देवी'। गुप्त जी ने यशोधरा के इस कामिनी-रूप की भी पूरी उपेक्षा की है। यशोधरा का कामिनी-रूप गौतम को काँटे-सा खटका। गुप्त जी के गौतम ने गोपा को हास की प्रतिमूर्त्ति, विलास की सामग्री और क्रीड़ा-कौतुक की जननी समझा, उस गोपा को जिसने अपने त्याग, सहिष्णुता, आत्मिक-बल और अटूट धैर्य का परिचय लोक को दिया। गुप्त जी ने पुस्तक के उत्तरार्द्ध में कामिनी की प्रशंसा विरहिणी गोपा के मुख से ही कहलायी है। आपकी यह काव्य-

युक्ति चरित्र-विकास की दृष्टि से पूर्ण महत्त्व नहीं रखती। तथापि कुछ प्रशंसा, आत्म-श्लाघा या आत्म-गौरव-वर्णन से कहीं अधिक महत्त्व रखती है।

मानव-इन्द्रियत्व (Human organism) शरीरान्तःकरण विशिष्ट है। (Human organism is body mind) उसे यह शरीर, अन्तःकरण, बुद्धि, अहंकार तथा सारी मनोवृत्तियां कामिनी के गर्भ ही में प्राप्त हुई हैं। कामिनी की सहायता बिना अमर-तत्त्व के अन्वेषण की कल्पना करना समुद्र के अभाव में उसके गर्भ से निकले मोतियों की भावना करना है। मनुष्य चाहे कृष्ण हो, अर्जुन हो, बुद्ध हो, नानक हो और गुरुगोविन्द हो, चाहे कंस हो, दुर्योधन हो, चार्वाक हो, शैतान हो और हिटलर हो, उसका निदान कारण तो कामिनी ही है। वधूवंश की प्रकृति कामिनी के बिना सृष्टि की संभावना नहीं। मनुष्य तो नरवंश और वधूवंश की गुण-परंपरा लिये कामिनी-गर्भ ही में अंकुरित होता है। अतः मानव की समग्र शक्तियों का मूलाधार मातृ-गर्भ है। वह मातृगर्भ कामिनी का गर्भ है।

बात ऐसी जान पड़ती है कि भारत में अति पुरातन काल से रमणी के रूप की उपेक्षा होती चली आयी है। वह स्वार्थ-लोलुप पुरुषों की इच्छाओं की पूर्त्ति का साधन समझी गयी है। उसकी दुर्बलता से पुरुष-समाज ने लाभ उठाया है। पुरुष लेखकों, नाटककारों और कवियों ने उस पर वासना का रङ्ग चढ़ा दिया है। उसे अधिक अंश में सत्य, त्याग, क्षमा, दया, शील, शौर्य, संयम और आत्मिक-बल पात्र नहीं समझा। मेरी नज़रों में पुरुष जितना वासना का दास है,

उतनी मात्रा में रमणी नहीं। पर पुरुषों के लिखे सभी धार्मिक और लौकिक ग्रन्थ कामिनी के दोषों का ही उद्‌घाटन करते हैं।

मानव-सृष्टि के दो प्रधान पहिए हैं—एक स्त्री और दूसरा पुरुष। सांख्यों ने इन्हें प्रकृति और पुरुष के नाम से पुकारा है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं। इन दोनों का क्रीड़ा-क्षेत्र यह विश्व है। सृष्टि-शकट के चलते हुए इन दो पहियों की प्रबलता और श्रेष्ठता केवल सृष्टि ही समझा सकती है। इन दोनों में किसका स्थान बड़ा है और किसका छोटा यह निश्चित करना अति कठिन है। स्त्री और पुरुष के महत्व को या तो अनादि और अनन्त काल समझता है या यह संसार। भारत का महाकवि वाल्मीकि स्त्री के महत्व को पूर्णतः समझता था। तभी तो उसने सीता और राम दोनों को एक ही मार्ग का बटोही बनाया। कृष्णद्वैपायन व्यास भी इस तत्व को समझता था। तभी तो उसकी दृष्टि में पाण्डवों का वनवास द्रौपदी का वनवास समझा गया और द्रौपदी का प्रलय पाण्डवों का विनाश।

कामिनी के रूप में वह अलौकिक आभा है जिसके कारण पुरुष जो सिंह को पछाड़ता है, पर्वतों को नाँघता है, अथाह समुद्र के गर्भ में ग़ोते लगा रत्नों का पता लगाता है, अपने जीवन को नारी-चरणों पर न्योछावर करता है। वह उसे गृहदेवी बनाता है, उसके सुखों के लिये अपने सुखों की तिलांजलि देता है, शूली पर चढ़ता है, जेल-यंत्रणा भोगता है, साम्राज्य पर भी लात मारता है और माता-पिता तक को भूल जाता है। यह सब क्यों ? इन प्रश्नों का उत्तर केवल नारी हृदय दे सकता है। समग्र संसार में सहृदय की खोज है। वह

विरहिणी यशोधरा ।

रमणी या तो पतिसंगिनी होती है या पतिवियुक्ता । प्रथम का दर्शन तो यशोधरा में प्रायः नहीं होता पर पति-परित्यक्त यशोधरा का निखरा स्वरूप यशोधरा में मिलता है । विरहिणी गोपा की पूर्वावस्था के चित्र के अभाव में उसकी प्रदर्शित त्याग-शीलता, सहिष्णुता, पति-भक्ति, आत्म-सम्मान और मातृत्व के विकास की पृष्ठ-भूमि का पता लगाना हमारे लिये नितांत कठिन हो जाता है । वाल्मीकि ने वियोग-विदग्ध सीता के चित्र अंकित करने के पूर्व उसके सुखमय जीवन के शौर्य के, राम के प्रति प्रेमभाव और सेवा के, उनके सुख में सुखिनी और दुःख में दुःखिनी समझने के अनेक ऐसे मर्मस्पर्शी दृश्य हमारे सामने रखे हैं जिनसे लंका में स्थित पतिवियुक्त सीता के दृढ़ पातिव्रत, उसकी कष्ट-सहिष्णुता, कर्त्तव्यपरायणता, आत्मिक-बल और चरित्र-शुद्धता की झाँकी मिलती है ।

इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि गुप्त जी का लक्ष्य प्रबन्ध-काव्य की रचना करना नहीं था । अतः वियोगिनी गोपा की पूर्वावस्था के अंकन की आवश्यकता नहीं जान पड़ती । मानव चरित्र के पन्ने मशीन या आरगैनिज़म (Organism) के पुरजे की भाँति एक दूसरे से जुटे हुए हैं । समस्त आरगैनिज़म के बोध के लिये उसके प्रत्येक पुर्जे की प्रगति को समझना ज़रूरी जान पड़ता है । यशोधरा के प्रेम की

[illegible]
[illegible]
[illegible]

यशोधरा कहती है कि [illegible] मानस में [illegible] की [illegible] और कुवासनाओं से मन को हटाने की क्षमता है, तब तक [illegible] कोई भी व्याधि उसे नहीं विकृत कर सकती। [illegible] रहेगा। संयमी के लिए जरा विश्रान्ति और [illegible] नवीन-जीवन प्रदायी है।

अन्त में यशोधरा का प्रेम-प्रवण हृदय उसे पति-प्राप्ति की अभिलाषा की सार्थकता और वास्तविकता का पाठ पढ़ा, प्रेमी हृदय की उपदेशिका के रूप में उसे घोषित करता है। वह इस चित्त-शुद्धि के आवेग में कह उठती है—

> आवो, प्रिय! भव में भाव-विभाव भरें हम,
> डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।

उसे पूर्ण विश्वास है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्त्तव्यों के पालन में निरत रह इस जीवन को सुखमय बना सकते हैं।

> तुम, सुनो क्षेम से, प्रेम गीत मैं गाऊँ।
> कह मुक्ति, भला, किस लिये तुझे मैं पाऊँ॥

अभीष्ट-प्राप्ति की उसकी इच्छा पति को गौतम के रूप में देखना नहीं चाहती। वह उन्हें संकेत करती है कि यशोधरा वीर-रमणी है। उद्देश्य की सिद्धि के बिना, कर्त्तव्य-रणक्षेत्र से पीठ दिखा कर

लौटे पति का स्वागत वीर पत्नी नहीं करतीं। अतः वह बड़ी कुशलता से इशारा करती हैः—

गये हो तो यह ज्ञात रहे!
+ +
जहाँ सफलता, मुक्ति वहीं तो,
यशोधरा की बात रहे।

वह घर बैठी-बैठी हृदय-तंत्री से पति के पास यह संदेश भेज रही है कि यशोधरा तो उन्हीं की है।

मुझे मिलोगे भला कहीं तो,
वहीं सही, यदि यहाँ नहीं तो।

तर्क करने की शक्ति यशोधरा की पति-प्राप्ति की इच्छा को कभी-कभी मसल देती है। उसे कभी-कभी संदेह हो जाता है कि विश्व-प्रेम में बँधा गौतम, शायद उसके प्रणय की अवहेलना न कर दे। इसलिये विश्व-प्रणय के हामी गौतम को वह याद दिलाती है।

चाहे तुम संबन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये,
तुम कितना ही तानो!

यशोधरा का प्रणय-पाश जन्म-जरा के अधीन नहीं है। वह पावन और व्यापक है।

प्रेम-सूत्र में बँधा हुआ गृहस्थ अकेले कोई भी शुभ-कर्म करने में स्वच्छन्द नहीं है। उसका कार्य दाम्पत्य सहयोग की दृढ़ भीति पर अवलंबित है। अतः यशोधरा के बिना गौतम बुद्ध नहीं कहला सकता।

गौतम को अमर तत्व के अन्वेषण में कृतकार्य हुआ सुन वह अपने को गौतम के कार्य-क्षेत्र का प्रधान साधन समझती है।

यदि प्रभुत्व है तुम में आया।
तो मैंने भी प्रभु को पाया।

पति के विजय का संदेश सुन उससे मिलने की इच्छा के स्फुटीकरण का लोभ-संवरण नहीं कर सकती। उसकी आतुरता—

अब भी समय नहीं आया ?
कब तक करे प्रतीक्षा काया, जिये कहाँ तक जाया ?—

इन पंक्तियों में प्रकट होती है।

यद्यपि वियोग-विधुरा बालाएँ पति से मिलने के लिए आकुल रहती हैं तथापि उनकी आकुलता की तह में दर्प छिपा रहता है और मान भरा। अमिताभ कपिलवस्तु के नरेन्द्र, प्राक्तन-पिता शुद्धोदन के घर पधारे हैं। सभी उनसे मिलने गये हैं। पर मानिनी गोपा स्वयं स्वागत-भेरी बजाने में अपने को असमर्थ पाती है। वह मान और अनुराग की मर्यादा पर डटी रहती है।

यदि वे चल आये हैं इतना,
तो दो पद उनको है कितना ?
क्या भारी वह, मुझको जितना।

× ×

पीठ उन्होंने फेरी !

गुप्त जी ने इन पंक्तियों में नारी-जाति का प्रतिनिधित्व ग्रहण कर [illegible] नर-समाज के सामने रख दिया है। विश्व के

प्राणियों का प्रतिनिधि-गौतम भला उस वधू-जाति की भावना कैसे नहीं ताड़ सकता है। वह सीधे गोपा के प्रकोष्ठ में पधार उससे प्रणय-भिक्षा की याचना करता है:—

मानिनि, मान तजो लो, रही तुम्हारी बान।
दानिनि, आया स्वयं द्वार पर, यह तत्रभवान्।
किसकी भिक्षा न लूँ, कहो मैं? मुझको सभी समान!

अमिताभ कामिनी यशोधरा के पति सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता को कोसते हुए अपने को मैत्री-करुणापूर्ण, शुद्ध और बुद्ध के रूप में सती गोपा के सामने प्रकट करते हैं।

क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की निर्दयता प्रियजान।
मैत्री-करुणापूर्ण आज वह शुद्ध-बुद्ध भगवान्॥

वियोगिनी वधू की एक मनोवृत्ति (अभिलाषा) की विविध अन्तर्दशाओं का उद्घाटन कर गुप्त जी ने अपनी वियोग-वर्णन-कला का परिचय दिया है। इस वियोग-वर्णन में हिन्दू आदर्श और आशावादित्व की झलक स्थान-स्थान पर मिलती है।

वियुक्त प्रेम की अन्य अन्तर्दशाओं के उद्घाटन में भी गुप्त जी सफल प्रयत्न हुए हैं। वियोगिनी वधू की दूसरी मनोवृत्ति 'चिन्ता' है। अभीष्ट की प्राप्ति अर्थात् वियोगी पति के संयोग के लिए भिन्न-भिन्न उपायों का चिंतन विरहिणी बाला करती है, यही चिन्ता है। गोपा गौतम की खोज में न स्वयं निकलती है और न औरों को खोजने भेजती है। सूर की गोपियों की भाँति न वह संदेशों से गौतम के रसातलवर्ती कूप को भरना चाहती है और न हरिऔध की राधा की भाँति 'पवना

में विकार' ही पैदा करना चाहती है । वह वीर क्षत्राणी की भाँति श्व-सुर शुद्धोदन को समझाती है कि गौतम की खोज करना उनके नियम के प्रतिकूल काम करना है । खोज तो असमर्थों की होती है । गौतम समर्थ हैं । भूलता तो अज्ञानी और मूढ़ है । उन्हें तो ज्ञान का उजाला हाथ लग गया है । गौतम के स्वजनों के लिए आवश्यक है कि वे उनके उद्योग की सफलता की शुभ कामना करें । सिद्धि लाभ कर, जरामरण का भैषज प्राप्त कर वह कहीं अन्यत्र ठहर नहीं सकते ।*

यशोधरा के लिए गौतम की प्राप्ति के उपाय, ऐश्वर्य का परित्याग, वासना का तिरस्कार, सुखोपभोग की इच्छाओं का दमन, मन की चंचलता का नियंत्रण, पति के सौंपे हुए कर्त्तव्यों का परिपालन, उनकी दिव्य-मूर्त्ति और लीलाओं का मन में ध्यान करना प्रभृति है ।

स्मृति—वियुक्त प्रणय की तीसरी दशा स्मृति है । यशोधरा पति के कल्याण की शुभेच्छा सदा हृदय में रखती है । शिशु-राहुल की परिचर्या में निरत रहती है । जब कभी कर्त्तव्यों की ओर से अपने को

---

*हे यशोधरे ! तू ही बता, उसके लिए मैं आज क्या करूँ ?

\+ ×

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
सिद्धि लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से ।

\+ +

किन्तु खोज करना उन्हीं के प्रतिकूल है,
खोज हम लावें उन्हें क्या वे ...

मोड़ कर शांति को अपनाने का प्रयत्न करती है, स्वामी की स्मृति जाग्रत हो उठती है। सोए राहुल की शय्या के समीप रजनी की अँधियाली में एकाग्र चित्त से प्रभु का चिंतन कर तन विभोर हो जाती है। अन्य कार्यों में द्वेष पैदा हो जाता है। वह श्वास और गान के द्वारा हृदयगत भावों के गुरुतर भार को हलका करने का असफल प्रयत्न करती है।

आओ हो वनवासी !
अब गृहभार नहीं सह सकती,
देव तुम्हारी दासी !

× ×

मुझको सोती छोड़ गये हो।
पीठ फेर मुँह मोड़ गये हो।
तुम्हीं जोड़ कर तोड़ गये हो।
साधु राग विलासी !

× ×

जल में शतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते हम न तरसते।
देखो दो-दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी !

हेमन्त में विश्व-पीड़ा की कसक सी, चपला की चमक और चन्द्र की स्निग्ध ज्योत्स्ना देख कर वह हेमन्त के आतप पर हेमहार न्यौछावर कर सकती है किन्तु 'प्रिय स्पर्श की 'पुलकावलि' नहीं विसार सकती।

गुणवर्णन—प्रिय की स्मृति इतनी व्यथाप्रद हो जाती है कि

वियोगिनी बाला का ध्यान मन की दूसरी वृत्ति अपनी ओर न खींचे तो उसके जीवन की इतिश्री समझिए। प्रिय को स्मृति-पट पर चढ़ाते ही उसके गुणों की और कार्यावली की तस्वीर खिंच जाती है। रमणी हृदयेश की लीलाओं के और दिव्य गुणों के कीर्त्तन में लग जाती है। यह गुण-कथन की मनोवृत्ति पतिपरित्यक्त पत्नी के डूबते हुए जीवन के लिये लाइफ़-बोट का काम करती है। हिन्दी के सभी कवियों ने वियोगिनी बालाओं के द्वारा प्रियतम के गुणों का वर्णन करवाया है। गुप्त जी भी इसी रीति का अनुसरण करते पाये जाते हैं।

प्राणेश के सौन्दर्य, शौर्य, बुद्धि, ज्ञान, विवेक, हास, आलाप, रूप, रंग, वेषभूषा, अस्त्र, शस्त्र, प्रभृति का वर्णन या कीर्त्तन गुण-कथन है। यशोधरा ने मन की इसी वृत्ति का सहारा ले वियोग-व्यथा के दुर्वह भार से टूटते कलेजे को बचाया। वह 'कुसुमादपि' सुकुमारी कहती है :—

मेरे लिये पिता ने सब से धीर वीर वर चाहा,
आर्यपुत्र को देख उन्होंने सभी प्रकार सराहा।

+ +

फिर भी उठ कर हाय ! वृथा ही उन्हें उन्होंने थाहा,
किस योधा ने बढ़ कर उनका शौर्य-सिन्धु अवगाहा।
देख कराल काल-सा जिसको काँप उठे सब भय से,
गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन, नागदत्त जिस हय से।
वह तुरंग पालित तुरंग सा नत हो गया विनय से,
क्यों न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से।

प्रियतम का गुण कीर्तन करती हुई वियोगिनी गोपा अपने अन्तर्तम में विरह की ज्वाला छिपाए ऋतुओं का आना और जाना देखती है। उन्हें आते न देख वह कोयल की भांति कूक उठती है—

सखि, वसन्त से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा सी यहाँ रही ?

पति के त्याग पर केवल वही विस्मित नहीं है, जड़ पेड़ भी गौतम का त्याग देख कर पत्ते छोड़ रहे हैं। विश्व के कोने-कोने में जागरण की गूँज उठ रही है। स्वामी के गुणगान में यशोधरा का दिवाना दिल उसके कल्याण मनाने में भी नहीं चूकता।

स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

उद्वेग—स्वामी के गुणों का गान करती हुई रमणी इस प्रकार पतिमय हो जाती है कि विश्व की सभी रम्य या अरम्य वस्तुएँ उसे प्रसन्नता प्रदान करने में असमर्थ हो जाती हैं। समग्र संसार प्रिय की अनुपस्थिति में उसे अप्रिय प्रतीत होता है। स्वयं अपना जीवन भी उसे नष्टशल्य सा व्यथाप्रद प्रमाणित होता है।

मरने से बढ़ कर जीना,
अप्रिय आशंकाएँ करना।
भय खाना, हा,
आँसू पीना।

\+ ×

अब क्या रक्खा है रोने में ?

इन्दुकले, दिन काट शून्य के किसी एक कोने में !

तारकित नभ, पियूषवर्षी चांद, हंसती उषा, सौरभ से भीनी शीतल हवा, नील जलद, सभी यशोधरा के लिए फीके, नीरस और अमनोरम हैं।

वह पवन को मन के इसी आवेग में पड़ कर फटकार बताती है—

पवन, तू शीतल मन्द सुगन्ध

इधर किधर आ भटक रहा है ?

उधर, उधर, ओ अंध !

उन्माद—उद्वेग के कठोर बोझ को ढोने में मानव-मस्तक अशक्त हो जाता है। उचित और अनुचित विचारने की उसकी शक्ति लुप्त हो जाती है। विवेक के बटखरे के अभाव में वह विश्व की वस्तुओं के तत्व की तौल नहीं कर सकता। ज्ञान-ज्योति के क्षीण होते ही वह चेतन को अचेतन और आम को नीम समझने लगता है। कभी रोता है, तो कभी हँसता, कभी ऊपर की सांस लेता है तो कभी नीचे की। हृदय के पेंडुलम की गति रुकने की नौबत आ जाती है। उसे यह खबर नहीं रहती कि वह क्या, क्यों और किससे बोल रहा है। प्रेम-वियुक्त चित्त की इसी क्षुब्ध वृत्ति का नाम उन्माद है।

प्रेम-वंचिता उद्विग्न-यशोधरा गौतम के संन्यास की बात सुनते ही पगली हो जाती है। वह सुन्दर, सुरचित, सुवासित तथा रत्नों से विभूषित सिर के केश को कोसना शुरू करती है।

जाओ, मेरे सिर के व्याल !

क्षोभ के आवेग में उनपर कटार चलाना चाहती है।

अलि, कर्त्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल !

प्रेमोन्मत्त हृदय अपनी मनोवृत्ति का प्रतिबिंब प्रकृति में देखता है।

रोहिणी ! हाय ! यह वह तीर,

बैठते आकर जहाँ वे धर्मधन ध्रुव धीर।

प्रेम से दीवाना दिल प्रेमी के लिये जड़-सरिता से अनुरोध करने में भी संकोच नहीं करता :—

रोहिणी ! मेरे लिये तनिक चक्कर खा,

नव यात्रा की तान ले।

कह देना इतना ही उन से जब उन को पहचान ले।

धाय तुम्हारे सुत की गोपा बैठी है बस ध्यान से।

संप्रलाप—प्रेम का बावला लक्ष्य को भूल कर असंबद्ध प्रलाप करता है। विरहिणी गोपा स्वभावतः इस व्यापक नियम का अनुसरण करती है। उन्मत्त-हृदय का असंबद्ध उद्गार ही प्रलाप है।

आली, पुरवाई तो आई, पर वह घटा न छाई,

खोल चंचुपट चातक, तू ने वृथा उठाई।

उसके कथन में क्रम का अभाव रहता है।

प्रिय, क्या भेंट धरूँगी मैं ?

यह नश्वर तन लेकर कैसे,

स्वागत सिद्ध करूँगी मैं ?

तुच्छ न समझो मुझ को नाथ !

व्याधि—संप्रलाप, उद्वेग और उन्माद का प्रभाव कोमल हृदय पर गाज ढा देता है। कोमलाङ्गनाएँ चित्त के क्षोभ और मन की अशांति से खान-पान, शयन और संस्कार की अवहेलना करती हैं। फलतः सूख कर काँटा हो जाती हैं। केवल अस्थि-पंजर अवशिष्ट रह जाता है। रक्त-निर्माण के उपकरण के अभाव में शरीर पीला पड़ जाता है। चिंता से जर्जरित पाकस्थली को भोजन के प्रति अरुचि हो जाती है। भयावह कृशता घेर लेती है। वियुक्त प्रेम की यह दयनीय दशा है जिस पर पत्थल भी पसीज जाता है और वज्र भी नरम हो जाता है। इसी दशा को काव्य के मर्मज्ञ व्याधि की संज्ञा प्रदान करते हैं। यशोधरा गौतम के वियोग में कृशता की पुतली बन गयी है। उसके गर्भ से निकला राहुल उसकी अशोकोत्सववाली छवि को पहचानने में अशक्त हो जाता है।

जड़ता—इस प्रकार जीर्ण-शीर्ण शरीर धारण करने वाली विरहिणी के मन और अंगों की चेष्टाएँ न्यून हो जाती हैं। उनमें चलने फिरने की शक्ति भी लुप्त हो जाती है। उद्वेग की अल्प अधिकता भी उन्हें मूर्च्छित अवस्था में निक्षिप्त कर देती है।

मन तथा अंगों की चेष्टाओं की न्यूनता के कारण—

"हरिणी सी काननों में, विहगिनी सी व्योम में।
मछली सी जल में म्लान, ढालती धरित्री को।"

कहती हुई गौतम मूर्च्छित हो जाती है।*

स्पन्दन को भी गिनना देने वाली यशोधरा के अंगों की भयावह

---

* मूर्च्छित है हाय! हाय! मेरी भामिनी यशोधरा।

जड़ता देख कर शुद्धोदन पुत्र गौतम को देखने की प्रबल इच्छा को और मुक्ति-प्राप्ति की शुभकामना को कुचल देता है। वह सच्चे शौर्य-शील क्षत्रिय की भाँति मंजु घोष करता है—

वेटी, उठ मैं भी तुझे छोड़ नहीं जाऊँगा।
तेरे अश्रु लेकर ही मुक्ति-मुक्ता छोड़ूँगा॥

प्रणय की मूर्त्ति, कर्त्तव्यता की पुतली, सहृदयता की खान, यशोधरा को देख कर ही गुप्त जी का शुद्धोदन सकल्प करता है—

गोपा विना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।

१० मृत्यु—सास-ससुर की सहानुभूति, राहुल के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा का न्यास, जरा-मरण पर विजय प्राप्त किए पति के शुभ दर्शन की कामना ने ही गोपा को वियुक्त प्रेम की दशम दशा प्राप्त करने से बचाया।

नाम-यश से विमुख, लोकाचारों में अपटु, वाह्य-जगत् की कल्याण-कामना से विरत गोपा ने हृदय की वेदना को राहुल के सामने मुस-कराहट के रूप में प्रकट किया और वधू-वंश तथा मातृ-पद की महत्ता का परिचय हृदय की विशालता के द्वारा दिया।

गुप्त जी ने वियोगिनी यशोधरा के वहाने उपेक्षित नारी-हृदय की वेदना का इतिहास कहा है। प्रकृति के हास और रोदन में उसकी अन्तस्तली के भावों का तार गूँथा है।

यशोधरा के वियुक्त प्रेम की अन्तर्दशाओं का अंकन अति सुन्दर, स्वाभाविक और पूर्ववर्ती प्राचीन हिन्दी कवियों की रूढ़ प्रथाओं से मिलता-जुलता हुआ है।

जननी-यशोधरा

गुप्त जी ने यशोधरा के कन्या, भगिनी और कामिनी-रूप की उपेक्षा का प्रायश्चित उसके वियोगिनी-रूप के मर्मस्पर्शी वर्णन द्वारा किया है। इस रूप के चित्रण में पुस्तक का आकार आवश्यकता से अधिक बढ़ गया है। वियोगिनी-रूप की ज्वाला में पड़ कर गुप्त जी की पैनी दृष्टि थोड़ी देर के लिये ऐसी झुलस गयी और मस्तिष्क क्षुब्ध हो गया कि उनके हृदय-गत भावों को कविता का आँचल छोड़ गद्य का पल्ला पकड़ने के लिये विवश होना पड़ा।

वर्णन विस्तृत और क्रान्तिकारी होने पर भी हिन्दू-हृदय के लिए विशेष आकर्षण रखता है। कभी-कभी वियोग-वर्णन की अन्तर्ज्वाला से दर्शन (Philosophy) के ऐसे विचार-धूम्रपुंज निकलते हैं जो चिंतन-शील और मनस्वी-मानव की बुद्धि को उलझन में डाल देते हैं। गुप्त जी का विप्रलंभ-वर्णन वास्तविकता और यथार्थता की भीति पर अव-लंबित है। इनने प्राचीन पूर्ववर्ती कवियों की भाँति विरह-वर्णन में ऊहा और अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया है। वर्णन-वैचित्र्य इनका लक्ष्य नहीं। हाँ यत्र-तत्र रहस्यवाद का पुट प्रदान करने में आपने संकोच नहीं किया है। वियोगिनी बाला का प्रदर्शित चरित्र उन ललनाओं के लिये उत्तेजनावर्धक भैषज (Tonic) का काम करेगा जो बात-बात में पति से बदला लेने की इच्छा रखती हैं, तिलाक का प्रश्न छेड़ती हैं, कर्तव्य-पालन की अवहेलना करती हैं और पारिवारिक

जीवन में अशांति की दीवार खड़ी करने में दिलचस्पी रखती हैं। स्त्री को नफ़रत की नज़र से देखनेवाले पाषाण-हृदय पुरुष की दृष्टि में भी यह वर्णन मुरौअत ला ही देगा।

यशोधरा के मातृरूप पर विचार करने के पूर्व यह कहना अनुचित न समझा जायगा कि गुप्त जी में वैज्ञानिक विचारों का वैसा विकास नहीं हो पाया है जैसा हम विश्व के अन्य कवियों में पाते हैं। कार्य की पूर्वापर अवस्था पर आपकी दृष्टि सीधे नहीं पड़ती। वर्तमान सदी में वैज्ञानिक विचार-विकास के अन्तिम धरातल पर पहुँच गये हैं। जब तक हमारे विचारों में शृँखला न होगी, जब तक हमारे विचारों के उन्मेष के लिए पर्याप्त कारण न देख पड़ेंगे, जब तक हमारी भावनाओं की पृष्ठभूमि का पता न लगेगा, तब तक उन विचारों और भावनाओं की प्रतिष्ठा, शिष्ट और सभ्यलोक में नहीं हो सकती। गुप्त जी ने यशोधरा को माता के उच्चतम आसन पर सहसा बैठा दिया है। उसे मातृत्व के गुरुतर भार के उद्वहन के लिए उपयुक्त होने के पूर्व ही उस पर यह बोझ लाद दिया।

किसी भी स्त्री के लिए जो माता होगी, जिसके हाथों में शिशु-पालन, शिशु-शिक्षा और शिशु-चिकित्सा का भार न्यस्त होगा शिशु-मनोविज्ञान की जानकारी नितांत आवश्यक है। केवल पुस्तकी मनो-विज्ञान के अध्ययन से यहाँ कम चलनेवाला नहीं। व्यावहारिक ज्ञान और पूर्वोपार्जित अनुभव इस दिशा में अपेक्ष्य हैं।

जगत् में उन उपेक्षिता स्त्रियों की भी संख्या अल्प नहीं जिनने हृदय की वियोग-व्यथा को रोक अपने बच्चों को सब प्रकार से योग्य
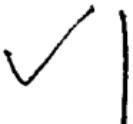
बनाया। जगत्-जननी रामपत्नी लवकुश-माता सीता, सर्वदमन भरत-माता शकुंतला, बभ्रुवाहन की मां चित्रांगदा, महाराष्ट्र वीर शिवाजी की जननी, पारसिक वीर सोहराब की माँ प्रभृति स्त्रियाँ उपेक्षिता ही तो थीं। वाल्मीकि की सीता मातृत्व-ग्रहण करने के पूर्व आश्रम वृक्षों के सिंचन, प्रवर्धन, देखरेख द्वारा, वन्य पशु-शावकों के परिपालन और विहग-बच्चों की शुश्रूषा द्वारा माता के कठोर और कोमल कर्त्तव्यों से जानकार हुई थी। कन्व के आश्रम-वृक्षों का सेवन शकुन्तला के भावी मातृ-जीवन के लिये पर्याप्त था। उसका लाड़ला, भुवन-विख्यात, भरत कश्यप के आश्रम में शिक्षित हुआ और शकुन्तला की आँखों के सामने। छत्रपति शिवा जी की जननी ने उसे अपने नेत्रों के समक्ष दादा जी कानदेव ऐसे अध्यापक प्रवर की संरक्षता में फूलने दिया। पुत्र के सामने कभी अपनी दुर्बलता प्रकट न की। उच्च आदर्श रख समुन्नत वातावरण में पुत्र की शक्तियों का विकास होने दिया। समय की प्रगति और तत्कालीन युग की आवश्यकताएँ महसूस कर पुत्र के लिये सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की। उसकी उच्च अभिलाषाओं के प्रवर्धन और उपलब्धि में हाथ बटाया। उसके शरीर, मन और अन्तः-करण की शक्तियों की पुष्टि के लिये कोई भी उपाय अप्रयुक्त न रखा।

प्राचीन भारत के ऋषियों के आश्रम विश्व-विद्यालय ही तो थे जहाँ सहस्रों छात्र निःशुल्क सवस्त्र और सभोजन शिक्षा प्राप्त करते थे। प्रत्येक उपेक्षित माता के पुत्र की शिक्षण पद्धति का कुछ न कुछ श्रेय रहता है। पाश्चात्य देश की महिलाएँ भी मातृत्व-प्राप्ति के पूर्व

सारमेय-शावकों का पालन पक्षियों की सेवा, वाटिका के वृक्षों के सिंचन और वर्धन द्वारा मातृ-हृदय के भावों से अवगत होती हैं।

राहुल-जननी ने किस वातावरण में किन-किन साधनों के सहारे अपने पुत्र की शिक्षा की व्यवस्था की इस पर गुप्त जी ने पूर्ण प्रकाश न डाला। जब यशोधरा जानती है कि पुत्र की शिक्षा और परिपालन के लिये गौतम ने उसे उपयुक्त समझ घर पर छोड़ दिया है, तब गुप्त जी के लिये राहुल की शिक्षा का समीचीन वातावरण निर्मित करना अति आवश्यक था।

काव्य के ५७ पृष्ठ में यशोधरा सर्वप्रथम जननी रूप में प्रकट होती है। रोते राहुल को सान्त्वना प्रदान करती हुई वह मातृ-हृदय का परिचय नहीं देती प्रत्युत विरहिणी हृदय की झल्लाहट का एक दृश्य उपस्थित करती है।

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !
रोता है, अब किसके आगे ?

इस प्रकार के वाक्य रोते बच्चे को और भी कुढ़ा सकते हैं और उनके क्रंदन की तीक्ष्णता को और बढ़ा सकते हैं। मानव-शिशु स्वभावतः मातृ-मुख का विकार देख हँसता और रोता है। 'चुप रह' की आवाज़ और उससे उत्पन्न मुख की मुद्रा शिशु के मनोवेग को बढ़ाने के अतिरिक्त घटा नहीं सकती।

गोपा अबोध बच्चे को इसलिये कोसती है कि गौतम के घर रहते यदि वह रोता, तो उसे वे रोते क्यों छोड़ जाते ?

तुझे देख पाते वे रोता, मुझे छोड़ जाते क्यों सोता ?

अब क्या होगा ? तब कुछ होता !

उपर्युक्त पद्यांशों से मातृहृदय का परिचय नहीं मिलता वरन् वियोगिनी-स्त्री की वेदना ही वहाँ से फूट कर निकलती देख पड़ती है।

हृदय की आकुलावस्था में वह धैर्य धारण कर शिशु की आवश्यकताओं की पूर्ति और अंगों के सजाने में नहीं लगती वरन् एक साधारण-बुद्धि महिला की भाँति रोते बच्चे को हाथ में लिये कहती है:—

बेटा मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को।
×　　　　×
मैंने अपने सब रस त्यागे।
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे।

वह मातृहृदय जो क्षोभ से परिप्लावित, वेदना से अवनत और अनवरत रोदन से प्रतिक्षण झंकृत होता रहता है शिशु के कल्याण या उसकी शक्तियों के विकास का उपाय सोच नहीं सकता। जिस स्त्री ने अपने जीवन का लक्ष्य 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' समझ रखा है, वह शिशु के समक्ष जीवन का सुखमय, शोभन और स्वस्थ चित्र उपस्थित करने में असमर्थ प्रमाणित होगी।

यशोधरा स्वयं ऐसी परिस्थिति की सृष्टि नहीं करती जिससे उसका प्यारा शिशु किलक उठे, स्वयं दूसरे छोटे बच्चे के सङ्ग में उसे नहीं छोड़ती जिसे चलते देख राहुल चलने का प्रयत्न करे। वह तो

राहुल की किलक, मोती से दूध के दाँतों की झलक, लटपट चरण चाल, अंब-अंब की रट से स्वयं नफा उठाया चाहती है।*

शिशु-शिक्षण शैली का महत्व क्रियात्मक-शिक्षा (Practical Training) में है, कोरे उपदेश में नहीं। जीवन की उषा में अनुकरण (Imitation) शिशु-जाति की शारीरिक और मानसिक शक्तियों के बढ़ाव में अधिक मूल्य रखता है। यदि कोई बच्चे से दौड़ने के लिये कहे, तो वह कदाचित् ही उसकी आज्ञा का अनुसरण करेगा। वह स्वयं दौड़ने लगे, हँसने लगे, उठने बैठने लगे, मुँह बिराने लगे, पढ़ने लगे, तो शिशु स्वभावतः उसका अनुसरण करेगा। गुप्त जी की यशोधरा अनुकरणात्मक शिक्षण शैली से अनभिज्ञ है। वह बच्चे को खिलाना चाहती है, उसे हँसाना चाहती है, पर स्वयं खाना और हँसना नहीं चाहती है। यह अप्राकृत शैक्ष युक्ति है। नंदरानी यशोदा की भांति यशोधरा राहुल की आँखों पर पलकों का गिरना और उठना नहीं देखती, बच्चे के चौंक-चौंक कर जागने, हाथ-पाँव हिलाने, सिमटने और फैलाने का पर्यवेक्षण नहीं करती, "करगहि अंगुठा मुख मेलत" में शिशु के अंगों का लचीलापन और कोमलत्व अनुभूत नहीं करती, बच्चे की मुखाकृति, शरीर के अंग-प्रत्यंगों की पूरी खबर नहीं रखती, उसके अवयवों की

---

* किलक अरे! मैं नेक निहारूँ!
इन दाँतों पर मोती वारूँ,
तू मेरी अँगुली धर अथवा मैं तेरा कर धारूँ।
लटपट चरण चाल अटपट सी मन भाई है मेरी!

परिपुष्टि के लिये उबटन, तेल तथा अन्य साधनों की स्वयं व्यवस्था नहीं करती, बच्चे की भोजन-रुचि के पता लगाने का प्रयत्न नहीं करती। किस समय और किस वस्तु में राहुल की रुचि अत्यधिक रहती है इसका पूरा पता नहीं रखती। बालकृष्ण की रुचि बढ़ाने के लिए, उनके शारीरिक बल के प्रवर्धन के लिए यशोदा उनके सामने टटका-टटका मक्खन स्वयं मथित दही से निकालती हैं। सद्यः दुहा हुआ फेनिल दूध रखती है, बलराम को खिलाती हैं। उद्दीपन को पा बालकृष्ण की रुचि सहसा मक्खन, दूध और दही की ओर प्रवृद्ध हो जाती है। बलराम को खाते देख वह स्वयं मक्खन-रोटी के लिए हठ करते हैं। गोप-बालकों को खेलते देख कृष्ण स्वयं क्रीड़ा-कौतुक में भाग लेने लगते हैं। गो-चारण के लिये दूसरों को जाते देख वह वन की खाक छानने के लिए लालायित हो जाते हैं। इसी शिक्षण-युक्ति और साधन का नाम है वातावरण। यही प्रत्यक्ष-शिक्षण शैली है (Direct method of teaching)। यशोधरा चाहती है कि राहुल की वाचाशक्ति विकसित हो, पर उस शक्ति के विकास का साधन उपस्थित नहीं करती। उसे तो रह-रह कर गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है—यही याद आता है।

गुप्त जी ने सूर की छाया पर शिशु की क्रीड़ावृत्ति, कौतुक, आग्रह, कहानी सुनने की चाह आदि मनोवृत्तियों का उल्लेख किया है। पर उन चित्त-वृत्तियों के विकास के लिए वातावरण प्रस्तुत न कर सके। इसका कारण स्पष्ट है। यशोधरा का विरहिणी रूप जिसका वर्णन गुप्त जी का अभीष्ट है उसकी धात्री, माता और

अध्यापिका के रूप को ग्रसित कर लेता है। उदाहरण के लिये राहुल की आग्रह-वृत्ति को लीजिए । नीले नभ-सरोवर में खिले हुए चांद को देख उसे पाने की हठ राहुल करता है। उसकी हठ की संतृप्ति जिस साधन द्वारा यशोधरा करती है वह अस्वाभाविक तथा अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

'पिता बनेगा तभी पायगा तू वह धन मन भाया।'

राहुल की उम्र के बच्चे के लिये यह रूपकात्मक उत्तर कोई मूल्य नहीं रखता। नूतन-नूतन पक्षियों की बोली सुन उनके नाम जानने की उत्कंठा बच्चों में उत्पन्न हो जाती है। राहुल का—'अम्ब यह पन्छी कौन, बोलता है मीठा बड़ा' पूछना तो बाल-स्वभाव-सुलभ विदित होता है। माता भी इस जिज्ञासा-वृत्ति का समाधान—'बेटा, यह चातक है' कह कर करती है। पर इसी प्रश्न का उत्तरार्द्ध और यशोधरा के उत्तर का अन्तिम भाग अनुपयुक्त जँचता है।१

बालकों में संग्रह करने की प्रवृत्ति (Collective instinct) पायी जाती है। प्रत्येक माता-पिता या अध्यापक का कर्त्तव्य है कि बालक को इस शक्ति के विकास में उचित सहायता प्रदान करे। यहाँ भी यशोधरा

१—अंब, यह पन्छी कौन, बोलता है मीठा बड़ा।
जिसके प्रवाह में तू डूबती है बहती॥

\+ +

मां क्या कहता है यह ?
पी-पी, किन्तु दूध की तुझे क्या सुध रहती है ?

हमें मातृरूप में निराश करती है। एक आम को राहुल ने लिये जुगा रखा था। वह आपाततः गल गया। यशोधरा के जब राहुल ने इसकी चर्चा की तो उसने अपने उत्तर द्वारा पुत्र के संग्रह-चित्तवृत्ति को कुचल दिया।

यह संग्रहवृत्ति पूर्ण विकास प्राप्त करने पर मानव को पुस्त संग्रह, ज्ञान-संग्रह, जन-संग्रह, मुद्रा-संग्रह के पवित्रतम कार्य-क्षेत्र उच्च स्थान प्रदान करती है। इतिहास, क़ानून, सिक्का, चित्र, पुस्तक लय के मूलभूत कारण इसी संग्रह-वृत्ति में हैं।[१] यशोधरा राहुल क संग्रह-वृत्ति की प्रवृद्धि के लिये उद्दीपन (Stimuli) प्रदान नहीं करती वरन् एक ऐसी फ़िलासफ़ी राहुल को सिखाती है जिसे शायद ही उसकी उम्र का छोटा बच्चा ताड़ सकता है:—

जड़ आम भले सड़ जावे,
पर चेतन भावना तभी वह तेरी
अर्पित हुई उन्हें है!

१—खुदाबख़्स पुस्तकालय के संस्थापक प्रातःस्मरणीय खुदाबख्स में यह संग्रह-शक्ति पूरी विकसित हो पायी थी। अकबर में लोक-संग्रह करने की प्रवृत्ति आवश्यकता से अधिक प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी जिसके फल- स्वरूप उसके दरबार में टोडर, बीरबर, फ़ैज़ी, रहीम, गंग, नरहरि, तानसेन, प्रभृति नररत्न विराजते थे। महाराष्ट्र-शक्ति के उन्नायक शिवाजी भी ऐसे ही थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व गोलोकवासी वायस चाँसलर श्री आशुतोष में भी इस प्रवृत्ति का अच्छा विकाश देख पड़ता था।

राहुल की इस चित्तवृत्ति का पुनः स्फुटीकरण यशोधरा में हुआ ही नहीं।

बालकों में ढाई चावल की खिचड़ी पकाने की मनोवृत्ति (Make believe) विशेषरूप से पायी जाती है। बालक इस प्रकृति-सिद्ध-शक्ति के सहारे बड़े-बड़े मंसूबे बाँधते हैं और आगे लिये एक नयी दुनिया, नयी परिस्थिति, नये समाज की सृष्टि कर लेते हैं। कालान्तर में यही प्रवृद्ध प्रवृत्ति उनके उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होती है। राहुल में यह मनोवृत्ति थी।* इस वृत्ति का भी संचालन यशोधरा उपयुक्त स्रोत में न कर सकी।

बालकों में कहानी सुनने और कहने की बड़ी चाह होती है। यह उन्हें जन्म से ही प्राप्त रहती है। शिक्षक कहानी सुनाने के बहाने बालक की स्मृति-शक्ति के विकास में सहायता प्रदान करते हैं। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अध्यापक कोई नयी शक्ति या नया ज्ञान बालक को प्रदान नहीं करते। बालक में सोचने, समझने, जानने, अनुभूति करने, हँसने, भयभीत होने, प्रेम और शोक प्रदर्शित करने की सारी शक्तियाँ विराजमान हैं।

जननी, जनक, अभिभावक, और अध्यापक का कार्य उसकी उन

---

*विहग समान यदि अंब, पंख पाता मैं!
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं।
मंडल बना कर मैं घूमता गगन में,

शक्तियों के विकास के लिये उद्दीपन उपस्थित करना और उचित वातावरण का सृजन करना है। यशोधरा में बालक की समग्र मनोवृत्तियों का प्रायः उल्लेख हुआ है और विकास के साधनों की चर्चा भी की गयी है पर उन साधनों का समीचीन प्रयोग नहीं हुआ है।

कल्पना कीजिए कि बालकों की मानसिक और शारीरिक-शक्ति के विकास के लिये स्कूल और कालेज खोल दिये जायँ, व्यायामशालाएँ निर्मित कर दी जायँ, लड़के भी वहाँ जाँय, पर उन लड़कों की रुचि, चित्तवृत्ति तथा शक्ति के अनुकूल विषयों के पढ़ने और पढ़ाने की व्यवस्था न की जाय तो वे बालक लाभ न उठावेंगे। पुनः जिन बालकों के मन का झुकाव सैनिक शिक्षा की ओर है, उन्हें 'धम्मपद' पढ़ाया जाय और जो चित्रकला में अभिरुचि रखते हैं, उन्हें गणित, तो इसका परिणाम यही होगा कि सैनिक और चित्रकार होने की उन बालकों की प्रवृत्ति उपयुक्त वातावरण के अभाव में विनष्ट सी हो जायगी। जो अवस्था जिन-जिन चित्तवृत्तियों के विकास के लिये उपयुक्त और प्रकृति से निश्चित है वह यदि टल जाय, तो उन मनोवृत्तियों का परिस्फुरण कुंठित हो जाता है और वे फिर प्रकट नहीं होतीं।

यशोधरा में शिष्टाचार-ग्रहण, आम्र-रोपण, धनुष-संचालन, अश्वारोह, व्यायाम, शस्त्र-संचालन, उपनिषदों के मंत्रों का अध्ययन, कीर, कीट और पतंगों का भोजन कराना, सङ्गीत, प्रभृति अनेक विषयों का राहुल के अध्ययन के लिए उल्लेख हुआ है। राहुल की

उम्र के लिये इतने विषयों का अध्ययन और अध्यापन उसकी शक्तियों के विकास में सहायक न हो बाधक प्रमाणित होंगे।

गुप्त जी कवि हैं अध्यापक नहीं। एवं शिक्षा-सम्बन्धी विषयों के प्रतिपादन में पूर्णतः कृतकार्य नहीं हुए, न उनकी यशोधरा मांता के कर्तव्यों का पूर्ण पालन ही कर सकी।

शिशु-राहुल।

माता और सन्तान में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। सन्तान के बिना माता की कल्पना वैसे ही असम्भव है जैसे जननी के बिना शिशु की। जननी यशोधरा का उल्लेख सन्तान राहुल का उल्लेख है। सन्तानोत्पत्ति ही कामिनी को मातृत्व की राजगद्दी पर बैठाती है और उसे सभय सम्मान तथा श्रद्धा का भाजन बनाती है।

शोक से भरी, गौतम में अपने अस्तित्व को आबद्ध करनेवाली गोपा, पुत्र-पालन के महत्व को भी समझती थी। एक म्यान में दो तलवार रखने का प्रयत्न करती थी। एक दुर्बल मानव-हृदय में पति-प्रेम तथा वात्सल्य दोनों को स्थान देने के लिये प्रयत्नशील थी। एक का प्रबल आवेग, दूसरे की प्रगति में रुकावटें उपस्थित करता था। वह निर्बल रमणी एक के लिये आँसू पीती तो दूसरे के लिये आँचल में दूध लिये फिरती थी। वस्तुतः दोनों को एक ही का विकार समझती थी। अतः हृदय में दोनों को बसाए चलती थी।

गौतम का प्रतिबिंब शिशु-राहुल, वियोगिनी गोपा का मेरुदंड, शुद्धोदन के बुढ़ापे की लकुटी और महाप्रजावती के क्लांत-जीवन का शांति-साधन था। वह मानव-शिशु की सभी मनोवृत्तियाँ और शारीरिक शक्तियों के साथ मातृगर्भ से निकला। उसकी सारी मनोवृत्ति और शक्ति मानव-शिशु जनोचित थी। वह न तुलसी सा दोनों जबड़ों में दाँत लिए और श्रीराम की रट लगाते उत्पन्न हुआ, न

चतुर्भुज कृष्ण सा हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये तथा वक्षस्थल पर वनमाला धारण किये। वह न खीष्ट सा कुमारी की कोख से निकाला और न उसके प्रादुर्भाव काल में प्रकृति ही प्रकंपित हुई। उसका इस लोक में आना प्राकृत था और उसमें गर्भ से ही गुण, शक्ति और चित्तवृत्तियाँ देख पड़ती हैं जो मानव-शिशु को जन्म से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार के प्राकृत शिशु की कल्पना आधुनिक युग का कवि ही कर सकता है और गुप्त जी इस बात के लिये युग के एक प्रधान कवि समझे जाते हैं।

यशोधरा का राहुल किलकता है, करवटें बदलता है, रोता है और अन्य शिशु-सुलभ चेष्टाएँ प्रदर्शित करता है। गृह और ग्राम वातावरण से उद्दीपन और प्रेरणा पाकर अपनी शक्तियों का विकास करता है। शक्तियों और मनोवृत्तियों के विकसित होने पर उस गृह और गृह से सम्बन्ध रखनेवाले माता-पिता, पितामह, प्रभृति के कल्याण में अनुराग प्रकट करता है। माता गोपा के संरक्षण और प्रेम से पर्याप्त शक्ति पाकर टांगों और अन्य अवयवों में [illegible] की अनुभूति करता है। अपनी असमर्थता और आवश्यकताओं के निराकरण के लिए जो पहले यशोधरा का मुँह जोहता था अब उसी के दुःखों के दूरी-करण के लिए उत्सुक हो उठता है![1] अन्ततः जो यशोधरा का लक्ष्य है और जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वह [illegible] करती थी,

1—मातः मैं भी तो सुनूँ, कैसी है वह मुक्ति?
कहाँ मिलेगी मुक्ति, बताओ? उसे जीतने जाऊँ।
बाँध न डालूँ इन चरणों में, तो राहुल न कहाऊँ।

बालक अपनी वैसी इच्छा प्रकट करता है तो आश्चर्य की गुंजाइश क्या ? अपने सिद्धान्त के प्रसार के लिये दृढ़प्रतिज्ञ तथा जीवन-प्रतिश्रुत बुद्ध, यदि अपने दोनों हाथों को फैला पुत्र राहुल को, जिसके मन और शरीर में उनकी निजी ज्योति जगमगा रही थी और जिसे उनकी स्नेहलता यशोधरा ने उपहार स्वरूप प्रदान किया था, सानन्द ग्रहण करता है तो इसमें विस्मय की बात ही क्या ?[१]

किसी भी सिद्धान्त या पद्धति की उपयोगिता उसके अन्तिम परिणाम से प्रस्फुट होती है। धात्री, माता तथा अध्यापिका के रूप में यशोधरा ने जो चेष्टाएँ कीं वे राहुल को केवल एक ही दिशा में उन्मुख करती हैं। वह दिशा है जीवन का कारुण्यपूर्ण मार्ग। यशोधरा में मेष-शावक, पक्षिनिधन तथा रक्षण की कहानियाँ, मीन, मृग, खग, कीर, केकी, कीट, प्रभृति को चुगाने का उल्लेख, वृक्षारोपण, 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव'-उपनिषद्-मन्त्र का पाठ, यशोधरा के विरहिणीरूप पर तरस खाकर राहुल की देवव्रती प्रतिज्ञा,[२] तप पर राहुल-गोपा संवाद,[३] मुक्ति जीतने की राहुल की स्पर्द्धा आदि

१—सत्य प्रकाश और अमृत एक साथ पा तू !
बुद्ध शरण, धर्मशरण, संघशरण जा तू !

२ - मैं वर बनूँ तो मुझे हत्या वधू-घात की !

३—घोर तपस्ताप तेरे तात ने है क्यों सहा ?
तू भी अनुशीलन का श्रम क्यों उठा रहा ?

\+ \+

लाभ करती हूँ इसी भाँति आत्म-बुद्धि मैं।

शील रूप अछूता रह गया था । सांप्रतिक समय के तृतीय दशक में गुप्त जी ने वियोगिनी गोपा के साथ आठ-आठ आँसू रोते हुए राहुल शिशु का वह स्वरूप सामने रखा है जिसमें शील का स्पष्ट स्वरूप तो नहीं, धुँधला चित्र नेत्रों के सामने खड़ा होता है। राहुल के शील (सात्विक आचरण) के वर्णन में मस्त होकर गुप्त जी ने शिशु सुलभ मनोवृत्तियों की अवहेलना की है। गुप्त जी का राहुल नटखट नहीं, खेलाड़ी नहीं, अन्य बालकों की संगति का तलबगार नहीं, अधिक हठी नहीं, आत्माभिव्यंजन की इसमें प्रबलता नहीं ।१

स्मरण रखना होगा कि शिशु दो प्रधान मनोवृत्तियों के साथ उत्पन्न होता है। प्रथम अन्तःवृत्ति आत्माभिव्यंजन की है, (Ego-instinct or self-assertive instinct) और दूसरी आत्म रक्षण या आत्म-जनन की है ।२ इन चित्त-वृत्तियों के अतिरिक्त अन्य शक्तियाँ भी उसमें जन्म से ही विद्यमान रहती हैं। साँस लेना, पसीने-पसीने होना, खाना-पीना और पचाना, हंसना, सोना, पलकें गिराना आदि अन्तःवृत्तियाँ उसे मातृगर्भ ही में से प्राप्त रहती हैं। शरीर विज्ञान के पण्डितों का कहना है कि शिशु की इन शक्तियों और अन्तः-वृत्तियों का संचालन सहानुभूतिशील रगों (Sympathetic nerves) के द्वारा होता है और ये रग रक्त-थैले (blood-vessels) से मिली रहती हैं। शिशु इन्हीं रगों के द्वारा पलकों को उठाता और गिराता

१—मैं कूद सकता था। परन्तु सब का मान रखने के लिए समर्थ होते हुए भी, मैं वहाँ तक न गया। पृ० ११७।

२—Sex instinct or self-preservative instinct.

हैं, खाँसता है, वमन करता है, खर्राटा लेता है, पैरों को फैलाता और गुदगुदाने या चकोटने पर सिकोड़ता है। इनके अतिरिक्त शिशु की कुछ ऐसी भी मनोवृत्तियाँ हैं जो विकास के लिये बाह्य प्रेरणा के वशीभूत हैं। उचित प्रेरणा के अभाव में शिशु न चलना सीख सकता है, न बोलना और न वृक्षादि या ऊँची जगह पर चढ़ने की उसकी शक्ति प्रवृद्ध होगी। उसके सामने छोटे-छोटे बच्चे न उपस्थित किए जाएँ, न सुन्दर-सुन्दर वस्तु रखी जाय और न नए-नए पशु, पक्षी, वृक्ष और लता के वातावरण में वह रखा जाय, तो यह निश्चय है कि शिशु के हृदय में न दूसरों के प्रति अनुराग उत्पन्न होगा, न उसकी शक्तियाँ विकास को प्राप्त होंगी और न उसके अनुभव का ही प्रवर्धन होगा। अतः प्रेरणा या उद्दीपन पाकर शिशु की जो वृत्तियाँ और शक्तियाँ बढ़ती हैं उन्हें अन्तःवृत्ति (Instincts) कहते हैं।

शिशु की अन्तःवृत्तियों में (१) बोलना (२) आखेट करना (पकड़ने, खेलने तथा छोटे-छोटे प्राणियों को तंग करने की प्रवृत्ति), (३) स्पर्द्धा, (४) संग्रह, (५) क्रीड़ा (खेल-कूद), (६) कौतुक, (७) भय आदि प्रसिद्ध हैं। ये अन्तः वृत्तियाँ शैशवकाल में अपूर्ण रहती हैं। प्रत्येक का विकास-काल भी अपना-अपना रहता है। यदि इनके विकास-काल बीत जाँय, तो वे अन्तःवृत्तियाँ अन्तर्हित और कुण्ठित हो जाती हैं। शिक्षक, अभिभावक और माता-पिता को चाहिये कि वे बालक की संगीत, ड्राविंग, भाषा, नेतृत्व, कौतुक, आत्माभिव्यंजन और आत्मरक्षण आदि अन्तःवृत्तियों के विकास के उपयुक्त काल को हाथों से बाहर नहीं जाने दें। भारत के अधिकांश

बालकों की आखेट-प्रवृत्ति जो युद्ध, शस्त्र-संचालन, सैनिक-संगठन के रूप में विकसित होकर प्रकट होती, वह लाट कानिंग के कानून के दबाव के कारण उद्दीपन न पा प्रायः लुप्त हो गयी।

राहुल की भय-मनोवृत्ति परछाईं के रूप में प्रकट होती है, कौतुक पक्षियों के नाम जानने के रूप में, क्रीड़ा मा के पीछे दौड़ने के रूप में; पर इनके विकास का उचित वातावरण उपस्थित नहीं किया गया। अतः उनका स्फुटीकरण यशोधरा में नहीं हुआ।

बालक की मनोवृत्तियाँ परिवर्त्तनशील होती हैं। एक स्रोत से दूसरे स्रोत में परिवर्त्तित की जा सकती हैं। बालक की आक्रमणकारी प्रवृत्ति (Aggressive instinct) को लीजिए। जो बालक दूसरे बालकों से लड़ने और झगड़ने में रुचि रखता है, वह यदि उचित वातावरण में रखा जाय तो राम-कृष्ण, रानाप्रताप, शिवाजी, वाशिंगटन हो सकता है। वह अनिष्ट, अत्याचार, पाप, दोष और अन्याय का दमन करने वाला प्रमाणित होगा। स्वयं सिद्धार्थ को शुद्धोदन ने ऐसे ही वातारण में रखा था। राहुल की यह आक्रमणकारी मनोवृत्ति यशोधरा की संगति में कुचल दी गयी।

आपाततः शिशु की आत्माभिव्यंजन तथा आत्म-रक्षण मनोवृत्ति पर थोड़ा विचार करना विषय के स्पष्टीकरण के लिये आवश्यक जान पड़ता है। उत्पन्न होते ही शिशु अपनी आवश्यकता क्षुधा और प्यास को क्रंदन के रूप में प्रकट करता है। सहृदयता की प्रतिमूर्ति मा शिशु के क्रन्दन और असमर्थता पर पसीज कर अपनी प्रसव-वेदना भूल जाती है और स्तन में शिशु के मुख को लगाती है। वही माता उस

शिशु के प्रेम की प्रथम वृद्धि-सिद्धि होती है। धीरे-धीरे गृह के अन्य व्यक्तियों के साथ उसका संपर्क बढ़ता है और उसकी प्रकृति को संतोष, प्रेम और चाह की परिपूर्त्ति से होता है। शिशु जिस वस्तु को चाहता है वह उसे न मिले या उस वस्तु की प्राप्ति में में कोई बाधक प्रमाणित हो, तो शिशु का उस वस्तु और व्यक्ति में प्रेम, घृणा या ईर्ष्या का रूप धारण करता है। शिशु राहुल चांद चाहता है। उसकी माँ उस चाह की पूर्ति—'पिता बनेगा, तभी पायगा तू वह धन मनभाया' द्वारा करती है। आश्चर्य तो यह है कि बालक का आग्रह भी शांत हो जाता है।

शिशु-जीवन के प्रथम दो वर्षों में सुखभावना (Pleasure motive) की प्रबलता रहती है। जो वस्तु उसे अच्छी लगती है, उसे वह बार-बार चाहता है और उसी प्रीतिकर वस्तु में उसकी प्रसन्नता है। जो वस्तु उसे कड़वी या तीती मालूम होती है उस ओर से वह मुँह मोड़ लेता है। वही उस के लिये दुःख है। इस उम्र में वह वस्त्रों की परवाह नहीं करता, नंगे रहना पसंद करता है, इसके कुतूहल (Curiosity) बेहद होते हैं, इसमें स्वार्थ का आधिक्य होता है। यह ईर्ष्यालु भी प्रतीत होता है। अपने से विभिन्न किसी दूसरे शिशु को माँ की गोद में देखना पसंद नहीं करता। अपनी माँ के प्रेम पर अखंड दबदबा रखता है। बाप तक का ईर्ष्यालु बन जाता है।

वैज्ञानिक युग के कवि होते हुए भी गुप्त जी इन शिशु-मनोवृत्तियों के प्रदर्शन में असफल प्रयत्न हुए। इनकी दृष्टि इस अवस्था के राहुल पर पड़ी ही नहीं। जब शिशु तीन-चार वर्षों का होता है तब अपनी

इच्छा को दूसरे बच्चों की उसी प्रकार की इच्छा से मिलान करने में प्रवृत्त होता है। यह अनुभव उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसकी आत्माभिव्यंजन-वृत्ति को व्याघात पहुँचता है। अपनी उम्र के दूसरे सबल शिशु के हाथ में रमणीय क्रीड़नक को देखकर वह उसे पाने की इच्छा करता है। बलात्कार करने तथा क्रोध प्रकट करने पर भी जब वह उसे नहीं पाता तब उसे अपने से विभिन्न शक्ति की सत्ता और स्वत्व की अनुभूति होती है पर इस अनुभूति में स्थायित्व नहीं रहता। अध्यापक, अभिभावक और मा-बाप के लिये आवश्यक है कि वे इस अवस्था के शिशु के सामने ऐसा वातावरण निर्मित करें जहाँ शिशु को आपस में मुठभेड़ करने का अवसर प्राप्त हो और वे अपनी शक्ति, सत्ता और योग्यता की सच्ची अनुभूति कर सकें। इस शिक्षण-व्यवस्था से शिशु आदर, सहानुभूति और पारस्परिक मेल का भाव एक दूसरे से ग्रहण करने में समर्थ होगा। गुप्त जी के राहुल में इस प्रकार की मनोवृत्ति की अति अल्प झाँकी मिलती है। वयः संधि पर आपकी दृष्टि दौड़ी ही नहीं।

जब शिशु पाँच या ६ वर्ष की अवस्था में प्रवेश करे तो उसकी आत्म-विस्फुरण-वृत्ति का विकास सामाजिक दृष्टिकोण से करना आवश्यक जान पड़ता है। इस अवस्था के पूर्व वह अपनी दुनिया का आप अधिपति बना रहता है। दूसरों पर उसका शासन चलता है। पर छः वर्ष की उम्र में प्रविष्ट करते ही उसकी आत्म-विस्फुरण-शक्ति को दूसरों की आज्ञा, विचार और कथन की अधीनता स्वीकृत करने के लिये विवश होना पड़ता है। अब इसका संपर्क गृह और परिवार

की परिधि से बाहर लोक के साथ बढ़ जाता है। स्वेच्छानुकूल काम करने में वह अपने को स्वतंत्र नहीं पाता। प्रतिक्रिया (Re-action) की भावना जाग्रत हो उठती है। लज्जा और बेकसी उसे दबा देती है। आत्माभिव्यंजन की प्रवृत्ति में परिवर्तन करने के लिये वह बाध्य हो जाता है। नग्न रहना उसे बेतरह खटकता है। वेश-विन्यास (Dressing) दूसरे से न करा स्वयं कर लेता है। दूसरों को स्वच्छ वस्त्र पहने देख स्वयं स्वच्छ रहने की चेष्टा करता है। जब किसी वस्तु के लिए अड़ जाता है और रोने-धोने, प्रयत्न करने, क्रोध प्रदर्शित करने पर भी वह उपलब्ध नहीं होती, तब अपनी मनोवृत्ति और शक्ति को दबाने की ज़रूरत महसूस करता है।

आत्माभिव्यंजन-वृत्ति को इस प्रकार दबाना बालक के स्वस्थ विकास के लिये हितकर नहीं समझा जाता। अतः यहीं पर सुयोग्य शिक्षक, कुशल अभिभावक और उन्नायक की सहायता तथा सहयोगिता की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार निपुण इंजिनियर प्रखर जल प्रवाह में रुकावट उपस्थित करने के पूर्व उसके अवरुद्ध जल के निकास की सर्वप्रथम व्यवस्था करता है, उसी प्रकार बालक की मनोवृत्ति, शक्ति, उमंग और उत्कंठा पर नियंत्रण रखने के पूर्व उसकी उन शक्तियों के निकास का प्रबंध करना चाहिए। रुका हुआ जल तट को तोड़ कर तीरवर्ती तरु और नगर को छिन्न-भिन्न कर देता है। एवं आत्माभिव्यंजन-वृत्ति को आघात पहुँचते ही बालक घर छोड़ भाग जाता है, दुष्ट बालकों के दल में मिल जाता है और हिंस्र स्वभाव ग्रहण करता है।

बात भी ठीक ही है। दस या ग्यारह वर्ष के बालक का सिर प्रौढ़ के सिर का आकार ग्रहण कर लेता है। उसकी सभी इन्द्रियाँ कार्य करने में समर्थ हो जाती हैं। बालक बालिका को अनुराग और सत्कार की दृष्टि से देखने लगता है। पुत्र की अभिरुचि माता के प्रति अधिक बढ़ जाती है और पुत्री की पिता के प्रति। पक्षपात और घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण बालक को सभी बातों में माता-पिता को सर्वश्रेष्ठ समझने की जो धारणा हो गयी थी उसमें संशोधन करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। निजी शक्ति में जो उसे त्रुटि देख पड़ती है, उसे दूर करने की चेष्टा करता है। मन की इसी अन्तःवृत्ति को आत्म-संरक्षण शक्ति कहते हैं। इस अन्तःवृत्ति के विकास का यही काल है। यूनान के बालक डीमास-थिनीस (Demosthenes) ने इसी उम्र में दूसरे यूनानी बालकों को सुन्दर और ओजस्वी व्याख्यान देते देख अपनी लड़खड़ाती ज़बान को दुरुस्त करने का संकल्प किया और बोलते समय मुख में कंकड़ डाल तथा अपने युग का बृहस्पति बन देश का नेतृत्व ग्रहण किया। इसी उम्र में सैण्डो (Sandow) ने अपनी शारीरिक दुर्बलता को आत्मिकविकास का विघातक समझ व्यायामों के द्वारा उसे दूर किया और अपने समय की शूरता का प्रतीक हुआ। इसी उम्र में कितने रुग्न बालक अपनी बीमारी के कारण डाक्टरी शिक्षा की ओर मुड़े और प्रसिद्ध चिकित्सक हुए।

सुन्दर वेश-विन्यास, तरह-तरह की सवारी पर चढ़ना, गाना, बजाना, नाचना, प्रभृति लिंगवृत्ति या आत्मसंरक्षण-वृत्ति की उपज हैं। बालक स्वभावतः इनमें दिलचस्पी रखता है। यदि बालक की

वह किशोरावस्था के शेष होते दोहरा डालता है। वह बर्बर मानव की भाँति वृक्ष पर चढ़ता है, नाले को फाँदता है, हरिण सी चौकड़ी भरता है, पशुओं के शिकार करने और दूसरों को तंग करने में प्रसन्नता की अनुभूति करता है। सभ्य मनुष्य सा वह माँ और बहनों से प्रेम-पूर्ण बातें करता है, नयी-नयी बातों को सोचता है, आविष्कारकों की भाँति नए-नए मंसूबे बांधता है। वह मानव के सभी गुणों और अव-गुणों को लिये उत्पन्न हुआ है। उसका एक रूप उज्ज्वल है तो दूसरा काला। वह एक बार मेष-शावक बनता है तो दूसरी बार बाघ। शिक्षा, संगति, अनुभव, अनुशीलन और अभ्यास उसकी तामस-वृत्ति को सात्विक-वृत्ति में परिणत करते हैं।

इतिहास से पता चलता है कि गौतम ने राहुल की उत्पत्ति के पश्चात् ही कपिलवस्तु छोड़ा। एक वर्ष बड़े-बड़े पण्डितों और ज्ञानियों की संगति में बिताया। सात वर्षों तक तप किया। एक-दो वर्ष धर्म के प्रचार में व्यतीत हुए। अतः कपिलवस्तु लौटने के समय राहुल शैशव और बाल्य अवस्थाओं का अतिक्रमण कर किशोरावस्था में पदार्पण कर चुका था। एवं कवि के हाथों में बालक राहुल के जीवन का सर्वोत्कृष्ट भाग समर्पित था। इस वैज्ञानिक युग का कवि बालक की अवस्था, चित्तवृत्ति तथा अन्तःशक्तियों की एक ऐसी सुन्दर और आदर्श तस्वीर तैयार कर सकता था जो सर्वकाल के लिये मान्य, ग्राह्य और अनुकरणीय होती। खेद की बात है कि गुप्त जी के हाथों में उपेक्षित गोपा के राहुल का चरित्र-चित्रण न्यस्त होने पर भी अपूर्ण ही रहा। अन्त में 'करमगति टारे न टरे" कहने के लिये विवश होना पड़ता है।

कविता-यशोधरा

कविता—कविता कवि की आत्मानुभूति और विश्व-वैचित्र्य की मार्मिक अभिव्यंजना है। यह उसके सुकोमल हृदय की वेदना की पुकार, आनन्द का उच्छ्वास और विश्वगत प्रेम, शोक, घृणा, उत्साह, भय और निर्वेद का प्रतिबिंब है। कविता त्रिकाल की प्रगति और पृथ्वी की प्रकृति की चित्रशाला है। यह जीवन-मरण की गुत्थियों के सुलझाने का सरल और सरस साधन है। यह मानव-जीवन की भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियो के प्रस्रवण का अति सुन्दर स्रोत है।

कवि और मनुष्य—कवि भी मनुष्य है। वह इन्द्रियात्मक है। उसका शरीर हमारे शरीर सा है। राग, शोक, घृणा-प्रेम, उत्थान-पतन, आसक्ति और अनासक्ति, सुख-दुःख समझने की जैसी शक्ति हम में है वैसी ही उसमें भी। भेद इतना ही है कि जिस वस्तु को हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, जिसके तत्व को हम ताड़ नहीं सकते और जिसके उत्कर्ष की ओर से मुँह मोड़ लेते हैं, कवि उन्हें खुले नेत्रो से देखता है और उनकी पहचान करता है। वह जीवन के उन स्वरूपों और समस्याओं को सम्मुख रखता है जिनसे हम पूर्व परिचित रहते हैं पर उन्हें उचित शब्दों के द्वारा दूसरों के सामने व्यक्त नहीं कर सकते। साधारण बात को भी कवि इस प्रकार-प्रकट करता है कि उसमें सौंदर्य छलक उठता है। जीवन की अन्त-स्तलों तक उसकी पहुँच है।

ऐसा ही मानव सच्चा कवि कहलाता है जो सत्य की खोज के लिए उत्कंठित रहता है, तत्व के चिंतन में अपने को भूल जाता है, वस्तु के 'शिवं और सुन्दरं' रूप का तलबगार है, अपने आकुल चित्त में उठते हुए उद्‌गारों का सरस चित्र खींचने में आनन्द की अनुभूति करता है और अपनी शुभ तथा अशुभ कामनाओं, अपनी जीत और हार को ज़बान प्रदान करता है।

सारांश यह कि हम में सभी कवि नहीं हो सकते। कवियों में भी अधिक ऐसे निकल पड़ते हैं जो जीवन की उचित व्याख्या नहीं कर सकते और न जीवन को भलीभांति समझने की शक्ति ही उनमें रहती है। त्रुटियों के रहते हुए भी वे कवि इसीलिये कहे जाते हैं कि उनके कथन और सच्चे कवियों की उक्ति का स्वरूप प्रायः एक-सा होता है। कवि और कुकवि दोनों की उक्ति संगीतात्मक होती है। दोनों के कथन में मनोवेग और कल्पना की प्रचुरता रहती है तथा लय और साम्य का पुट। इन लक्षणों के कारण प्रत्येक कवि का कर्म काव्य कहलाता है अन्यथा एक कवि की कविता दूसरे की कविता से विभिन्न है। प्रत्येक काव्य अपनी विशेषता रखता है। वह जीवन के खास पहलू पर प्रकाश डालता है और अपने रचयिता के व्यक्तित्व की छाप लिए रहता है।

कवि और जगत्—जिस कवि का संबन्ध जगत् के साथ जितना घनिष्ठ होगा, उसका अनुभव उतना ही गहरा और कविता उतनी ही मर्मस्पर्शिनी होगी। जगत् जड़-चेतनमय है। पर्वत, पेड़, प्रातः-संध्या, आकाश, अर्णव, निर्झर, लता आदि अचेतन और पशु, पक्षी,

मिलाना पड़ता है और अपने को कवि रूप में परिणत करना पड़ता है। काव्य में कल्पना की प्रचुरता रहने के कारण काव्य-मर्मज्ञ में भी कल्पनाशक्ति अपेक्ष्य हो जाती है।

कविता के अध्ययन में उत्तरोत्तर अनुराग और सहानुभूति का प्रदर्शन उस काव्यगत ज्ञान का प्रतिक्षण प्रवर्धन करता है।

उदार विचार से प्रेरित होकर कवि-कर्म की समालोचना करनी चाहिए। आवेश में आकर किसी कवि पर समीक्षा का चाबुक चलाना उचित नहीं जान पड़ता। समीक्षकदल के लिए आवश्यक है वे काव्य, कला, संगीत आदि की उपयोगिता की एक ऐसी कसौटी तैयार करें जिसमें पक्षपात, निजी मनोवृत्ति, रुचि और अरुचि को स्थान न मिले। अपने दृष्टिकोण से दूसरों की कृति की जाँच पक्षपात से पूर्ण है। समीक्षक को ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि अपनी रुचि के कवियों की आलोचना करते समय वे उनकी कविता पर प्रशंसा का पिरामीड (Pyramid) खड़ा कर दें अथवा सिगरेट से निकलते अग्नि-स्फुलिंग को उद्दीयमान बाल-सूर्य समझ लें।

कविता कोई मज़हब या धार्मिक बंधन तो है नहीं। अतः इसमें रूढ़ियों की गुंजाइश नहीं। प्रत्येक मनुष्य अनेक कवियों के अध्ययन करने और उनकी पूजा करने में पूरी स्वतंत्रता रखता है। अनेक कवियों के अध्ययन से उसकी तुलनात्मक-दृष्टि विकसित हो जाती है और उसके काव्य-संबन्धी विचार सभी विवेकवान् व्यक्ति की नज़र में मूल्य रखते हैं।

सच्चा काव्य समीक्षक पक्षपातों की पवित्र तिलांजलि दे सहानुभूति-

शील हृदय से किसी कवि की कविता की आलोचना करता है। (१) समीक्षा करते समय वह यह देखने का प्रयत्न करता है कि उसके कवि ने जिस सत्य की खोज की है, जो अनुभव प्रकट किये हैं और जो सिद्धान्त लोक के सामने रखा है, उनका चित्रण और उल्लेख पूर्ववर्ती काव्यों में हो चुका है या नहीं। यदि नहीं तो सौंदर्य और सत्य के किस पहलू पर पूर्ववर्ती कवियों ने विचार किया था और उनके किस अंग पर प्रस्तुत कवि ने प्रकाश डाला है।

(२) प्रस्तुत कवि ने शील, सत्य और सौंदर्य का जो अंकन किया है उससे और सुन्दर तरीक़े से क्या दूसरा नहीं कर सकता ?

(३) यह जगत् गुण-दोष मय है। इसमें सज्जन और दुर्जन, पापी और पुण्यात्मा, परोपकारी और अपकारी, कामुक और विरक्त, दरिद्र और धनी, अज्ञ और विज्ञ सभी निवास करते हैं। इस जगत् का एक भाग ज्योतिर्मय है तो दूसरा तमसाच्छन्न। दोनों का विवेचन जगत् का सच्चा चित्रण है। विचारशील समालोचक अपने कवि में यह देखने का प्रयास करता है कि उसका कवि जगज्जीवन के किस रूप का रसिक है और उसके लोक-रूप के वर्णन में कहाँ तक वास्तविकता है। काव्य के पात्रों की अन्तःवृत्तियों के दिग्दर्शन में कवि को किस परिमाण में सफलता प्राप्त हुई है। जीवन में पूर्णता और स्थिरता की खोज निरर्थक है। मानव-जीवन अपूर्ण और अस्थिर है। जिस कवि की दृष्टि केवल गुण ही पर पड़ती है और दोष की ओर से हटी रहती है, वह कदाचित् ही मानव-मनोवृतियों का खाका खींच सकेगा। वह

आदर्शवादी भले ही कहा जाय, पर मानव-हृदय का सच्चा चितेरा नहीं हो सकता ।

(४) यह संसार जो हमें अति पुराना प्रतीत होता है यथार्थतः प्रतिक्षण नवीनता प्राप्त कर रहा है। परिवर्तन का चक्र प्रबल वेग से प्रति पल चल रहा है । सभ्यता और समय के सुदृढ़ पहिए पर सवार इस संसार की वस्तुओं की क़ीमत में सदा हेर-फेर होता रहता है । एवं जो कविता आज प्रशंसा का पात्र बन बैठी है कल संभवतः अनादर की दृष्टि से भी देखी जा सकती है। इसलिये विश्व के अमर-कवि अपनी नज़र हमेशा जीवन के गुण-दोष और राग-अपराग पर रखते हैं ।

(५) किसी भी कवि की रचना वस्तुतः मौलिक नहीं समझी जा सकती। प्रत्येक कवि की अन्तरात्मा का विकास बाह्य जगत् के संपर्क से होता है। वह कोई नवीन सृष्टि नहीं है। पूर्ववर्ती कवियों की शृङ्खला में वह औरों-सा बँधा हुआ है। कवि कवि है। उसे "मनीषी परिभूः आत्मभूः" की कोटि में रखना अनुचित है । अन्य मनुष्यों की भाँति वह भी प्रारंभिक अवस्था में अपनी आँखों से नहीं देखता वरन् दूसरे मनुष्यों की दृष्टि से काम करने में प्रवृत्त होता है। वह भी अपने अनुभव को दूसरे मनुष्यों की सहायता से बढ़ाता है। वह भी जीवन के प्रारंभ में अनुकरण से नफा उठाता है।

वह कवि मौलिक है—इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह लोकाचार या लोकमत से विभिन्न विचार प्रकट करता है। मौलिक मनुष्य वही है जो वस्तुओं का तत्व समझता है। जो वस्तु साधारण मनुष्य को नहीं सूझती उसे वह अपने विकसित नेत्रों से देखता है। स्वयं वह

कभी यह अनुभव नहीं करता कि उसमें मौलिकता है।'[1]

यशोधरा—कविता, कवि और समीक्षा की एक कसौटी तैयार कर मैं कविप्रवर गुप्तजी की यशोधरा कविता पर एक हलकी दृष्टि निपात किया चाहता हूँ। गुप्त जी बीसवीं शताब्दी के हिन्दी कवियों में प्रमुख स्थान ग्रहण करते हैं। इनकी रचनाओं से हिन्दू-सभ्यता, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-आदर्श की गूँज निकलती है। इनने प्रभूत संख्या में स्फुट, खंड, प्रबंध और गीति-काव्य लिखे हैं। इनकी समग्र रचनाओं पर विचार करना इस लेख का लक्ष्य नहीं।

यशोधरा गीति-काव्य है। स्वयं गुप्त जी ने पुस्तक की भूमिका में इसे गीत, कविता, नाटक, गद्य-पद्य, तुकांत और बेतुकांत पदों का अजायब-घर बना दिया है। पर है यह गद्य-पद्य मिश्रित काव्य जिसमें गीति की विशेषताएँ पायी जाती हैं। कवि ने यशोधरा में उपेक्षित नारी जीवन का तत्व दर्शाया है। वर्तमान युग में राष्ट्रीयता और सामाजिकता की प्रबलता है। गुप्त जी ने हिन्दू समाज ही को अपने काव्यों का विषय बनाया है। यशोधरा के उपेक्षित नारीजीवन का अंकन भी सामाजिक प्राणी-सा किया है।

यशोधरा का संक्षिप्त कथानक—बिना किसी से कहे सुने घरद्वार, पुत्र-कलत्र, माता-पिता, राज-पाट, धरणी-धाम, छोड़कर चले गये पति का संदेश सुन यशोधरा सर्व प्रथम शोक से कातर हो गला फाड़-फाड़

१—इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर मैंने यशोधरा तथा उसके कवि पर ऊपर विचार प्रकट किए हैं।

कर साधारण रमणी की भांति रोती है। प्रियतम के चरित्र की उज्वलता, हृदय की विशालता और विश्वप्रेम का स्मरण कर उन्हें कल्याण-बुद्धि समझती है और अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर अर्पित करती है। राहुल को गौतम का प्रतीक और शाक्य-वंश का प्रवाहक समझ दिल से यथाशक्ति उसका पालन करती है, उसकी शिक्षा और विकास में अपने अनुभव के अनुकूल योग प्रदान करती है, पुत्र वियोग से व्याकुल सास और ससुर का प्रबोध करती है, प्रजाओं के पालन में उनके मन को लगा गौतम के पीछे विरक्त होने से उन्हें रोकती है। पशु और पक्षी तक की ख़बर लेती है। इन्हीं समाज संबन्धी कल्याणकर-कार्यों में अपने को लगा कर वियोग के अनिश्चित काल का यापन इस आशा से करती है कि प्रियतम से उसका मिलन निश्चित है। केवल देश और काल का निश्चय उसे नहीं है। अपने कार्यक्रम से अवकाश पाने पर उसका चित्त दौड़ कर गौतम की ओर जाता है और अवकाश काल को रोदन, स्वामी के गुणकीर्त्तन आदि में बिताती है।

गौतम को अमरतत्व की प्राप्ति होती है। उनके रहने की जगह का पता लगता है। तौ भी न वह किसी को गौतम के पास भेजती है और न उन्हें बुलाती है। उसे विश्वास है कि विश्व का चाहनेवाला गौतम गोपा को कभी भूल नहीं सकता। गौतम, बुद्ध के रूप में, कपिलवस्तु आते हैं, गोपा से मिलते हैं और वह राहुल को उनके चरणों पर न्यौछावर कर स्वयं गौतम बुद्ध के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है।

कथानक का आधार—यशोधरा की यह कथावस्तु कवि की कोरी कल्पना नहीं है। कथावस्तु के आलंबन गौतम, गोपा, राहुल, शुद्धोदन, नन्द आदि सभी ऐतिहासिक पात्र हैं। सबों का उल्लेख बुद्ध-चरित, सौन्दरनन्द आदि बौध-ग्रन्थों में हुआ है। हिन्दू धर्म के अनुयायी होने के कारण गुप्तजी ने यत्र तत्र गीता, उपनिषद्, साँख्य आदि ब्राह्मण ग्रन्थों से भी काव्य-सामग्री ली है।१ गौतम के जीवन-सम्बन्धी दो-चार आख्यानों का ज्यों-का-त्यों हिन्दी में अनुवाद कर रख दिया है।२ राहुल के वर्णन में सूर की कृष्ण-केलि से प्रभावान्वित जान पड़ते हैं।३ आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव से अछूता नहीं जान पड़ते यद्यपि आश्रम-शिक्षा की ओर भी संकेत किया है।४ वियोगिनी गोपा का वर्णन अलंकार और रस-ग्रंथों में वर्णित विरहिणी

१—मैं त्रिविध दुःख विनिवृत्ति हेतु बाँध अपना पुरुपार्थ सेतु। सांख्य शास्त्र के "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्ययन्तपुरुपार्थः" का प्रायः अनुवाद ही है।

२—पृष्ठ संख्या ८० के 'विहग निधन और रक्षण' की कहानी, पृष्ठ संख्या ३६ के मेषशावक का आख्यान, पृष्ठ संख्या १४४ के अमृतोदन खिलाने का आख्यान बुद्ध-चरित से सम्बन्ध रखते हैं।

३—चाँद के लिए आग्रह, परछाईं देख भीत होना कहानी सुनने की चाह प्रभृति।

४—व्यायामशाला का उल्लेख, पृ० सं० ११४ में भूगोल ज्ञानादि का उपार्जन।

वनिताओं की मनोवृत्तियों का स्मरण दिलाता है। इन गुणों से काव्य-प्रणयन में सहारा ले इन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा यशोधरा-काव्य की जो रचना की है वह प्रति इंच गुणीय है।

यशोधरा-काव्य की उत्कृष्टता :—

कविता का सौन्दर्य भाव और अर्थ में निहित रहता है। वही कविता सार्थक और साभिप्राय समझी जाती है जिस पर लौकिक और प्राकृत जीवन की गहरी छाप रहती है। यशोधरा में स्थान-स्थान पर साभिप्राय पद पाये जाते हैं और वे कवि के लोक-अनुभव के द्योतक हैं।

कुटिल गति भी गण्य तेरी, धन्य निर्मल नीर;
वार दूँ मैं इस झलक पर मंजु मुक्ता हीर।
वह चली लोकार्थ ही तू पहन पावन चीर,
रह गया दो बूँद देकर यह अशक्त शरीर।

यशोधरा ने पति गौतम के साथ सैकड़ों बार रोहिणी के तट पर संचरण किया होगा। उसका कुटिल प्रवाह देखा होगा। कभी भी उसके जल-प्रवाह में उसे विशेषता नहीं देख पड़ी। विरह-दशा में वह अपना रानीपन खो बैठती है। उसका मन संसार की सभी वस्तुओं से हटकर केवल रोहिणी के प्रवाह पर जम जाता है उसमें उसे आज आभा देख पड़ती है। रोहिणी को अपने से अधिक उपयोगिनी समझती है। आज वह सरिता, उसका प्रवाह उसका तट, उसका निर्मल नीर सभी गोपा के लिये संदेश रखते हैं।

पूर्व परिचित वस्तु के प्रति कविता हमारे अनुराग को और भी दृढ़ करती है।

यह छोटा सा छौंना,
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर सलौंना।

राहुल गोपा की कोख से निकला था। कई बार गौतम के साथ पलने पर पौढ़ते हुए वह उसे देख चुकी थी। कभी अपने प्रेम का प्रदर्शन अनूठे ढङ्ग से नहीं किया था। घर से गौतम के चले जाने के बाद राहुल को देख उसकी दुर्बलता और असमर्थता अनुभूत करती है। शिशु के जीवन को महान् और सार्थक बनाने की इच्छा से सभी अरमान, सभी कामना और सभी लक्ष्य भूल कर कह उठती है :—

मेरा शिशु-संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम
प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो।

प्रत्येक कविता ख़ास उद्देश्य रखती है। उसमें कुछ ऐसी बात रहती है जिसका संबन्ध हमारी स्मृति से रहता है। उसकी व्याख्या करना हमारे लिए अति कठिन हो जाता है।

राहुल पल कर जैसे तेसे
करने लगा प्रश्न कुछ वैसे।
मैं अबोध उत्तर दूँ कैसे ?
वह मेरा विश्वासी,
आओ हे वनवासी !

अन्तिम पद कितना मर्मभेदी है।

सभी बड़ी कविताओं में सौंदर्य रहता है। सौंदर्य ईश्वर का गुण

है। यह दिव्य है, इसकी अनुभूति आध्यात्मिक है। मौन, भय और श्रद्धा सौन्दर्य के सहचर हैं। काव्य-कला का कार्य सौंदर्य को व्यक्त करना है। जहाँ कला सर्वोत्कृष्ट रीति से सौंदर्य की व्यंजना करती है, वहीं कविता स्वर्गीय हो जाती है। सुषमा में पावनता है। हममें सभी इस सौंदर्य की अनुभूति नहीं कर सकते। किसी अच्छी कविता में जिसे सौंदर्य न देख पड़े, उसे यह मानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि वह सौंदर्य अनुभूत करने की क्षमता नहीं रखता।

वही कवि कविता को सुषमा प्रदान करता है जो स्वच्छन्द कल्पना को वास्तविकता के डैने पर उड़ाता है। केवल वर्ण्य वस्तु का विशद चित्रण काव्य-कला का कार्य नहीं है। लक्ष्य की सिद्धि के लिए उचित साधनों का उपयोग करना कला का कार्य है। कला संयत और सुशासित कल्पना की परिणाम स्वरूप है। जिसकी कल्पना संयत और सुशासित है, वही सच्चा कलाकार है।

काव्य-कला फ़ोटोग्राफ़ी नहीं है जिसमें सभी अवयवों का विन्यास आवश्यक समझा जाता है। काव्यकलाविद् जो कुछ देखता है, सोचता है और अनुभूत करता है, उन्हें उसी रूप में हमारे सामने नहीं रखता। वह सामग्री का चयन करता है और उसकी सफलता सामग्रियों के सुन्दर चयन पर निर्भर करता है।

ऋतुओं के वर्णन में गुप्त जी ने संयत कल्पना से काम लिया है। प्रकृति के विकारों के साथ विरहिणी गोपा के मनोविकारों का समन्वय स्थापित किया है। कल्पना को इतने संयत स्रोत में प्रवाहित किया है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु में भेद नहीं लक्षित होता।

उनकी शांति, कांति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में।

कपिलवस्तु छोड़ने के समय गौतम के हृदय में विचार सहस्रधारा हो कर फूट रहे थे पर कवि की संयत कल्पना ने महाभिनिष्क्रमण-शीर्षक पदों में वह सौंदर्य ला छोड़ा है जो पढ़ते ही बनता है :—

राहुल, मेरे ऋण-मोक्ष, तात!
लाऊँ मैं जब तक अमृत आप,
माँ ही तेरी माँ और बाप;
झूल, मातृ-हृदय के मृदुल दाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम, राम!

×   ×

छन्दक, उठ, ला निज वाजिराज,
तज भय-विस्मय, सज शीघ्र साज।
सुन, मृत्यु-विजय-अभियान आज!
मेरा प्रभात यह रात्रि-याम।

कवि के शब्द-चयन, शब्द-सार्थकता और संयत कल्पना की उड़ान सभी श्लाघ्य है।

कवि कभी-कभी अपनी कल्पना पर नियंत्रण रखने में अशक्त हो जाता है। कल्पना का प्रवाह इतना प्रखर और प्रभूत हो जाता है कि वह उसे दबा नहीं सकता। महाकवि हरिऔध के प्रियप्रवास तथा गुप्त जी की यशोधरा की परिगणना उत्कृष्टतम काव्यों में होती यदि अनि-

यंत्रित कवि-कल्पना इनके आकारों के प्रवर्धन में सहायक नहीं होती। उत्कृष्ट कविता की विशेषता यह है कि उसमें न एक शब्द जोड़ा जा सकता है और न एक शब्द घटाया जा सकता है। यशोधरा के विलाप, राहुल-संवाद, गद्यांश आदि अनियंत्रित कवि-कल्पना के विलास हैं। इन प्रसंगों में असंयत कल्पना के प्राचुर्य के कारण कविता में शैथिल्य आ गया है और पाठकों को मानसिक क्लांति घेर लेती है।

काव्य-साहित्य में वातावरण का सृजन करना अति कठिन और नाजुक काम समझा जाता है। प्रस्तुत सामग्रियों में से सुन्दर कथा-वस्तु को चुनना और उससे कविता रचना और भी क्लिष्टकर कार्य है। कोई भी काव्यकार कवि-जीवन के आरम्भ में सुन्दर कथावस्तु का उपयोग नहीं कर सकता। यशोधरा गुप्त जी के प्रौढ़ कवि-जीवन की उपज है। यहाँ भी सामग्रियों का सुन्दर चयन और संश्लिष्ट योजना न हो सकी।

सरलता सत्काव्य की कसौटी है। सरल और संयमपूर्ण कथन में सदा आकर्षण रहता है। सत्काव्य की रचना में हृदय के उद्गार सरल भाषा का अनुसरण करते हैं। साधारणतः गुप्त जी की सभी रचनाएँ सरल और निखरी हुई खड़ी बोली में लिखी गई हैं। द्विवेदी काल से आप के हाथों में खड़ी बोली काव्य की भाषा के रूप में पड़ कर मँज गयी है। यशोधरा और साकेत में खड़ी बोली का परिमार्जित स्वरूप देख पड़ता है। संस्कृत के शब्दों का प्रचुर परिमाण में कवि ने प्रयोग किया है। कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे सामासिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ

है ।१ चालीस वर्षों में गद्य-पद्य की भाषा के एकीकरण के प्रयत्न होने पर भी यशोधरा में यहाँ वहाँ "तव", संघं शरणं गच्छामि, 'गैरिक-दुकूलिनी' आदि कतिपय पद खटकने वाले प्रतीत होते हैं। ऐसे शब्दों के कारण पद में क्लिष्टत्व दोष का समावेश हो गया है ।

काव्य भाषा पर प्रभुत्व हो जाने के कारण यशोधरा के कतिपय पद दुरूह और अति दुर्बोध प्रमाणित होते हैं ।* ऐसे पदों की संख्या अति अल्प है ।

कविता का सौंदर्य भाषा और भावों के संयम के साथ व्यवहार में पाया जाता है । गुप्त जी के अधिकांश पदों में सुषमा कूट-कूट कर भरी हुई है । इनके अनेक पद सूक्ति के रूप में परिणत हो गये हैं ।

१. मरने को जग जीता है !

२. मिलता है जो रसपूर्ण घट, भरा हुआ भी रीता है ।

३. क्या योग, क्या दुर्भाग्य है,

---

१. त्रिविध-दुःख-निवृत्ति-हेतु, कर्मकाण्ड ताण्डव विकास, हृदय-विजय रण बुद्धि लाभ ।

* कादम्बिनी--प्रणय की पीड़ा हँसी तनिक उस ओर ।

× ×

खलती है उसकी मुसकान ।

× ×

सखि ! निरख [illegible] की [illegible] दिखा यह आ रही,

[illegible] फिर सुमन स्वर्ग की [illegible] सी आ रही ।

यह जीवन का फूल हाय !
पका और कच्चा फल इसका
तोड़-तोड़ कर काल खाय ?

वैज्ञानिक विचारों का स्फुटीकरण कवि ने सरल भाषा में किया है।

जलने को ही स्नेह बना,
उठने को ही बाष्प बना है;
गिरने को ही मेह बना है।

कवि का सूक्ष्म निरीक्षण भी ऊँचे दरजे का है। गुणग्राही मानव-हृदय प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने में बाज नहीं आताः—

जलता स्नेह जलावेगा ही
फोले बाष्प फलावेगा ही,
मिट्टी मेह गलावेगा ही।

लय की दृष्टि से यशोधरा के पद अधिक अंश में मनोहर हैं। कविता लयात्मक होती है। लय में एक स्वर दूसरे का अनुगमन करता है। लय ज़ीवन का सतत सहचर है। प्रवहनशील पवन की प्रगति में; सरिता के स्पंदमान सलिल में, लवणाम्बुनिधि की लोल लहरियों में, पक्षियों के कलरव में लय है। तभी वे श्रुतिमधुर प्रतीत होते हैं। लय के अभाव में सुन्दर वाक्य भद्दे जान पड़ते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि यशोधरा गीति-काव्य है। यह उस काव्यपरंपरा की शृंखला या कड़ी है जो विद्यापति के समय से हिन्दी-भाषा में प्रणीत होता चला आ रहा है।

गीति-काव्य जीवित भाषा की प्रधान रीढ़ है। बच्चों के सुलाने, चक्की पीसने, भोजन बनाने और खिलाने के समय स्त्रियाँ इसका अधिक प्रयोग करती हैं। सभी रसों में गीत-काव्य लिखा जा सकता है। वीर और शृंगार इस काव्य के उपयुक्त रस हैं। यह अपनी श्रोत्राभिरामता के लिये प्रसिद्ध है। सूर के सूरसागर और तुलसी की विनय-पत्रिका गीति काव्य के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। पदों में माधुर्य लाने के लिए और उन्हें श्रवण सुखद बनाने के लिए शब्द-विन्यास, अलंकार-योजना, पद-संगठन तथा वाक्यों की लाक्षणिकता आदि अपेक्ष्य हैं।

पदों को श्रवण सुखद बनाने की काव्याचार्यों ने अनेक युक्तियाँ बतायी हैं। उनमें एक दो का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। सानुनासिक वर्णों का प्रयोग, टवर्ग का परिहार, रेफ और विसर्गयुक्त शब्दों का परित्याग, सामासिक शब्दों का अप्रयोग, य र ल व स ह अक्षरों का विन्यास काव्य को श्रोत्राभिराम बनाते हैं। सानुप्रास शब्दों का प्रयोग भी काव्य के माधुर्य का प्रवर्धन करता है। पर अनुप्रास की आवश्यकता से अधिक योजना पद में कृत्रिमता उपस्थित करती है। कहीं-कहीं बच्चों में उमंग और उत्साह भरने के लिये और उन्हें उत्तेजित करने के लिये टवर्ग से युक्त काव्य अपेक्ष्य हैं। सूर ने भी ऐसे पदों का व्यवहार किया है।

मशीनगन के कतिपय छंदों में काव्यगत गुणों का सुन्दर संनिवेश हुआ है।

> मंद-मारुत है कसक हमारी और गमक है हूक,
> चातक की करुण-हृदय-ध्वनि जो, सो कोइल की कूक।

उनका यह कुंज कुटीर वही
झड़ता उड़ अंशु अबीर जहाँ,
अलि कोकिल, कीर, शिखी सब हैं
सुन चातक की रट 'पीव' कहाँ।
अब भी सब साज समाज वही
तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि! जा पहुँचे सुध संग कहीं
यह अंध सुगन्ध समीर वहाँ॥

काव्य का उत्कर्ष न केवल विचार या भाव में है, न शब्दों में, न लय में, न श्रुतिमाधुर्य में वरन् इन सबों के समन्वय में। गुप्त जी के अनेक पदों में भाव, भाषा, लय, माधुर्य और रस की सम्मिलित धारा बहती है।